सिद्ध योग

संस्थापक, सम्पादक तथा संरक्षक

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्र मोहन जी महाराज

वर्ष ३

दिसम्बर १-९७०

वार्षिक मूल्य १०) रुपया

सुधा-रस

जा दिन तें निरख्यौ नँदनंदन,
कानि तजी घर बंधन छूट्यौ।
चारु बिलोकनि की निसि मार,
सँभार गयी मन मार ने लूट्यौ॥
सागर कौं सरिता जिमि धावति,
रोकि रहे कुल कौ पुल टूट्यौ।
मत्त भयौ मन संग फिरै,
रसखानि सुरूप सुधा-रस घूट्यौ।

—भक्त रसखान

अंक

इस अंक का मूल्य १ ५०

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन, सवाई ऐत्मादपुर आगरा

श्री विश्वगुरु प्रकाशन
सवाई-एत्मादपुर
आगरा

इस अङ्क में :—

लेख	लेखक	पृष्ठ
१. यह नाशवान देह	....	१
२. स्त्रियाँ और दीक्षा	(हमारा विशेष लेख) योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज	२
३. स्वाध्याय प्रयोजन और प्रकार	श्री प्रो० चन्द्रहासजी शर्मा आचार्य एम. ए., एम-एड.	६
४. मोक्ष प्राप्ति के साधन	वैद्य श्री रामधन शर्मा शास्त्री बी. ए., एम-एड.	२४
५. कुछ प्रश्न और उनके उत्तर	पूज्य श्री गुरुदेवजी के सौजन्य से	३०
६. करिष्ये वचनं तव	श्री पण्डित मनोहरलाल शर्मा एम० ए०, गुरुभक्तरत्न	३६
७. चण्डीगढ़-समाचार	श्री गुरुदेव जी द्वारा योग की महत्ता पर प्रकाश	४५
८. सचित्र योगासन और उसके लाभ		४६
९. सवाई-धाम	श्री जुगमन्दरदासजी सहारनपुर	५२
१०. श्री गुरुदेव जी का कार्य-क्रम		५३

संयुक्त सम्पादक
श्री 'दिव्य'

ॐ

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

वर्ष ३ | अङ्क ९

"ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्'
मर्त्यो मृत्योर्मुखे विचरन्तो, मुक्तिं आप्नोति मर्त्यः ।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुविशदवत् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः' ॥

दिसम्बर १९७०

यह नाशवान देह !

यदा मेरुः श्रीमान्निपतति युगान्ताग्निनिहतः
समुद्राः शुष्यन्ति प्रचुरमकरग्राहनिलयाः ।
धरा गच्छत्यन्तं धरणिधरपादैरपि धृता
शरीरे का वार्ता करिकलभकर्णाग्रचपले ॥

जब श्रीमान् सुमेरु पर्वत प्रलय-कालीन अग्नि से निहत होकर धराशायी हो जाता है बड़े-बड़े ग्राहों का स्थान समुद्र भी सूख जाता है, पर्वतों से धारण की गई पृथ्वी भी नाश को प्राप्त हो जाती है, तब हाथी के कानों के अग्र भाग के समान अति चञ्चल इस शरीर का भरोसा ही क्या है ?

स्त्रियाँ और दीक्षा

हमारा विशेष लेख :—

[योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज]

[२]

'स्त्रियाँ और दीक्षा' सम्बन्धी एक लेख 'सिद्धयोग' के पिछले अंक में प्रकाशित हो चुका है, उसमें स्कन्द पुराण का एक उपाख्यान दिया गया है। जिसमें कहा गया है कि कलावती नामकी एक काशी-नरेश की कन्या का विवाह मथुरा के दशार्ह नाम के राजकुमार से हुआ था। राजकुमारी कलावती अपने बाल्यकाल में ही दुर्वासा मुनि से शक्तिपात-दीक्षा प्राप्त कर चुकी थी जिसके फलस्वरूप वह अध्यात्म-विकास से पूर्णरूपेण विकसित हो चुकी थी। उसके हृदय में आत्म-तेज हर समय झिल-मिलाता रहता था। उसका विवाह हो गया था। किन्तु विवाह हो जाने के बाद जब उसके पति ने उसका सम्पर्क करना चाहा तो वह अपनी पत्नी कलावती के आत्म-तेज से पीड़ित होकर पीछे हट गया। उसे अपनी पत्नी का शरीर धधकते हुए अंगारे के समान जान पड़ा। अपनी पत्नी की इस अनुपम प्रतिमा को देखकर उसने सप्रेम पत्नी से पूछा कि इसका क्या कारण है कि मैं तुम्हारे शरीर को जलता हुआ देख रहा हूं। अपने पति के प्रश्न के उत्तर में राजकुमारी ने कहा कि हे महाराज ! मैं बाल्यकाल में ही दुर्वासा ऋषि से दीक्षा प्राप्त कर चुकी हूं इसलिये गुरुदेव के द्वारा प्राप्त मंत्र के तेज से मेरे पाप सब प्रकार से दहन हो चुके हैं। यह ऋषि की दीक्षा का प्रभाव है। आपने राजकाज करते हुए अनेक प्रकार के पाप किये हैं। कुलटा स्त्रियों से गमन किया है। अतः आपको भी पूर्ण सामर्थ्यवान गुरु से दीक्षा प्राप्त करके अपने आपको निष्पाप बना लेना चाहिये। तभी आप मेरे साथ सहवास कर सकेंगे। प्रतिकूल इसके सम्पर्क होना असम्भव रहेगा और यदि प्रयास करोगे तो इससे हानि ही होगी। पत्नी के समझाने पर पति ने गर्ग मुनि से जाकर के सप-त्नीक दीक्षा प्राप्त की। दीक्षा लेने के बाद मंत्र के तेज व गुरुदेव के प्रभाव से वह राजा पाप रहित हो गया और बाद में गर्ग मुनि से आज्ञा प्राप्त करके उस राज-दम्पति ने अपना दाम्पत्य जीवन सुख-

पूर्वक व्यतीत किया। यह उपाख्यान स्कन्ध शाक्तोत्तरखण्ड ३ का है। इस उपाख्यान से यह भली प्रकार सिद्ध हो गया कि गुरुदेव के शक्तिपात से क्या परिणाम साधक को हुआ करता है और स्त्रियों को दीक्षा लेने का अधिकार भी है या नहीं। स्त्रियों के विषय में आमतौर पर जनता में इस प्रकार का प्रचार है कि उनको किसी गुरु से दीक्षा प्राप्त नहीं करनी चाहिये। उनका पति ही उनका गुरु होता है। इसके अतिरिक्त किसी और से दीक्षा प्राप्त करना उपयुक्त नहीं है। इस उपरोक्त उपाख्यान से लोगों की यह भावना केवल मात्र कपोल-कल्पित ही मालूम पड़ती है। हमारे प्राचीन इतिहास में इस प्रकार के और भी बहुत से उपाख्यान हैं जिनसे यह भली प्रकार से साबित हो जाता है कि स्त्रियों को अपने कल्याण के लिये यदि सामर्थ्यवान गुरुदेव मिल जांय तो अध्यात्म-विकास हेतु दीक्षा अवश्य प्राप्त करना चाहिये। स्त्रियों के शरीर में और पुरुषों के शरीर में अन्तर ही क्या है। हाड़, मांस और चर्म आदि के द्वारा प्रकृति से एक पुतला निर्मित हुआ। लिंग भेद से हम उसे स्त्री कह दें या पुरुष कह दें। यह तो केवल मात्र मन की विडम्बना है। वस्तुतः तो स्त्री और पुरुष में कोई भेद नहीं। आत्मा न पुरुष है न स्त्री है न नपुंसक। केवलमात्र एक अमर-ज्योति के रूप में विशुद्ध प्रकाश है, जो हर शरीर को अपना अधिष्ठान बना करके चमकता रहता है। लिंग भेद से जिन नामों द्वारा उसको अभिव्यक्त किया जाता है उन्हीं नामों से वह व्यावहारिक होता रहता है यदि उसको स्त्री कहा जाता है तो उसके लिये स्त्रीलिंग के शब्दों का प्रयोग होता है और पुरुष कहा जाता है तो पुलिंग वाचक शब्दों का प्रयोग होता है। तत्वतः पुरुषों के अन्दर जो चेतना शक्ति है वही स्त्रियों के अन्दर है। पुरुषोंके अन्दर जो मनन करनेकी शक्ति है वही स्त्रियों के अन्दर भी है पुरुष जिस प्रकार से गन्ध ग्रहण करते हैं उसी प्रकार से स्त्रियां भी गन्ध ग्रहण करती हैं। पुरुष जिस प्रकार से अपने आपको स्वतंत्रता पूर्वक सुखी रखना चाहता है उसी प्रकार से स्त्रियां भी अपने आपको सुखी रखना चाहती हैं। जब स्त्रियों का खाना-पीना, सोना-बैठना, बोलना-चलना सब कुछ पुरुषों के समान ही है तो पुरुषों के समान अध्यात्म-चिन्तन क्यों नहीं कर सकतीं क्या उनको आत्मोत्थान का अधिकार नहीं है? क्या वे लोग पुरुषों के समान ही आध्यात्मिक क्षेत्र में आकर अपने आपको पूर्णरूपेण विकसित नहीं कर सकतीं? अवश्य कर सकती हैं। आसन बन्ध मुद्रायें या [illegible] योग मुद्रायें क्यों नहीं कर सकतीं। क्या उन लोगों को बिना शिक्षा के अध्यात्म-विद्या प्राप्त हो जायेगी और क्या वे अपना उत्थान कर सकेंगी यद्यपि स्त्रियों का पूर्णरूपेण पतिव्रत और पुरुषों को पूर्णरूपेण पत्नीव्रत होना ही चाहिये। तभी गृहस्थ में पारस्परिक सुख हो सकता है अन्यथा नहीं हो सकता। किन्तु पतिव्रत और पत्नीव्रत पालन में गुरुदेव बाधक नहीं होते प्रत्युत पूर्णरूपेण सहायक रहते हैं क्योंकि गुरुदेव का स्वरूप मनुष्य के विकृत मन के अन्दर शुद्ध सात्विक प्रकाश को फैला-

है ही। जिस समय सप्तऋषि पार्वती की परीक्षा के लिये भगवान शिव के कथन से पार्वती के पास गये तो उन्होंने वहां जा करके नारद मुनि की कुछ अनावश्यक निन्दा की और कहा कि नारद मुनि की बात को मान करके हे पार्वती किसी ने भी आज तक सुख नहीं पाया और तुम ने नारद की बात मान करके परम उदासीन भगवान शिव को प्राप्त करने की इच्छा की है यह ठीक नहीं। भगवान शिव अमंगल वेष हैं सदा जंगलों में पड़े रहते हैं। देखो नारद मुनि ने एक बार दक्ष के पुत्रों को उपदेश दिया था। उन्होंने घर-बार फिर लौट करके नहीं देखा। चित्रकेतु के घर को भी नारद ने चौपट कर दिया था। नारद मन का कपटी है ऊपर से सज्जन दिखाई देता है जो इसके वचन को मानते हैं वे भिखारी बन जाते हैं। इस प्रकार जब नारद मुनि की निन्दा की और भगवान शिव की उपेक्षा कर बैकुण्ठ पति विष्णु को वर लेने का आग्रह किया तो जगदम्बा पार्वती जी ने इस प्रकार उत्तर दिया :—

सत्य कहेहु गिरि भव तनु एहा।
हठ न छूट छूटै बरु देहा॥
कनकउ पुनि पषान तें होई।
जारेहुं सहज न परिहर सोई॥
नारद बचन न मैं परिहरऊं।
बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊं॥
गुरु के बचन प्रतीति न जेही।
सपनेहुं सुगम न सुख सिधि तेही॥

अर्थात् हे मुनियो! तुमने सत्य कहा है। मेरा यह शरीर पर्वत से उत्पन्न हुआ है इसलिये हठ नहीं छोड़ा जा सकता। सोना पत्थर से पैदा होता है लोग इसको जला डालते हैं किन्तु वह अपने स्वभाव स्वर्णत्व को नहीं त्यागता। इसलिये मैं नारद मुनि के वचन को बिल्कुल नहीं छोड़ सकती क्योंकि शास्त्र का वचन है कि जिसको गुरु के वचन पर विश्वास नहीं होता उसको कभी भी सुख और सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। इतना ही नहीं शाण्डिल्य-स्मृति आदि में तो जिस पुरुष या स्त्री ने दीक्षा प्राप्त नहीं की उनके दर्शन करना भी निषेध कहा है :—

नास्ति येषां गुरुर्नॄणां
नारीणां चापि मन्त्रदः।
न तेषां वदनं वीक्ष्यं
गतिस्त्वेषां न विद्यते॥

अर्थात् जिन स्त्रियों या पुरुषों का कोई मंत्र दाता गुरु नहीं है उनके दर्शन नहीं करने चाहिये, जो लोग ऐसे पुरुषों के दर्शन करते हैं वे सद्गति को नहीं पाते। रामायण में शबरी का उपाख्यान मिलता ही है जिसका जिक्र हम ऊपर कर चुके हैं। तुलसीकृत रामायण में भगवान श्रीराम ने नवधाभक्ति का उपदेश करते हुए इस प्रकार कहा है:—

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥
गुरु-पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुनगन करइ कपट तजि गान॥
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा।

पंचम भजन सो बेद प्रकासा।
छठ दम सील बिरति बहु करमा।
निरत निरन्तर सज्जन धरमा॥
सातव सम मोहि मय जग देखा।
मोते संत अधिक करि लेखा॥
आठव जथा लाभ संतोषा।
सपनेहु नहिं देखइ परदोषा॥
नवम सरल सब सन छलहीना।
मम भरोस हिय हरष न दीना॥
नवमहु एकउ जिन्ह के होई।
नारि पुरुष सचराचर कोई॥
सोई अतिसय प्रिय भामिनि मोरे।
सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे॥

अर्थात् भगवान राम ने शबरी को उपदेश करते हुए संतों के संग को प्रथम भक्ति बतलाया है और दूसरी भक्ति उनकी कथा में मन को लगाना और तीसरी भक्ति अभिमान रहित होकर श्री गुरुदेव के चरण कमलों की सेवा कहा है। चौथी भक्ति में कपट रहित होकर अपने गुणगान करने की आज्ञा दी है। पांचवीं भक्ति में स्वाध्याय जप आदि का आदेश दिया है और छठी भक्ति में जितेन्द्रियता अच्छा चरित्र एवं वैराग्य का उपदेश किया है और सातवीं भक्ति में विष्णुमय जगत देखने की एवं संतों के मान का उपदेश किया है। आठवीं भक्ति में जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तुष्ट रहना एवं पराये दोषों को न देखने का आदेश दिया है और नवधा-भक्ति के अन्दर सरलता के साथ कपट रहित बर्ताव करना हृदय में अपने प्रति आस्था रखना कहा है। यह सब नवधा भक्ति के रूप हैं। बाद में यह भी स्पष्ट रूप से कह दिया है कि संसार में जितने स्त्री-पुरुष हैं उन सब में यदि इन नवधा भक्ति का प्रकाश हो जाय वह मुझे अत्यन्त प्यारा है। शबरी को सांत्वना देते हुए भगवान राम ने कहा कि शबरी! यह सब प्रकार की भक्ति तुमने दृढ़ता से की है। वैसे किसी एक व्यक्ति में स्त्री-पुरुषों में होना भी अति उत्कृष्ट समझा जाता है। उन्होंने कहा इन सब में से कोई भी एक प्रकार भी भक्ति करता है तो वह भी मुझे अति प्यारा है और जहां पर तीसरी भक्ति का वर्णन करना प्रारम्भ किया वहां पर स्पष्ट रूप से कह दिया :—

गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भक्ति अमान।

अर्थात् श्री गुरुदेव जी के चरण कमलों की अभिमान रहित होकर के सेवा करना तीसरी भक्ति है। यदि श्रीराम को स्त्रियों का गुरुभक्त होना अभीष्ट न होता तो उपरोक्त शब्द किसी भी प्रकार से नहीं कहते। भगवान श्रीराम ने गुरु पद पंकज को अभिमान रहित होकर सेवा करना तीसरी भक्ति मानी है। इसलिये जिन लोगों का यह विचार है कि स्त्रियों को दीक्षा ग्रहण नहीं करनी चाहिये वह वे बिल्कुल भ्रम में हैं। विचारने वाली बात एक ही है कि स्त्रियों को पति-परायण रहना चाहिये। व्यभिचारिणी नहीं बनना चाहिये। श्री गुरुदेव के उपदेश लेने वाली स्त्रियां व्यभिचारिणी ही हो जायेंगी यह कोई नियम की बात नहीं। जो स्त्रियां रसभरे नृत्य देखती हुई व्यभिचारिणी नहीं हो सकतीं

जो युवती लड़कियाँ युवा लड़कों के साथ सह शिक्षा को प्राप्त करती हुई व्यभिचारिणी नहीं हो सकतीं, वे गुरुदेव के पवित्र चरण-कमलों में आकर भ्रष्ट हो जायेंगी यह बात केवल मात्र कपोल कल्पित मिथ्या एवं भ्रमपूर्ण है। हमारे पुराने इतिहास में इस प्रकार के प्रमाण भी बहुतायत से मिलते हैं कि समय-समय पर सधवा स्त्रियों ने एवं कुमारी कन्याओं ने भी समर्थ गुरुओं से मंत्र प्राप्त किये और उन्होंने अपने जीवन को पवित्र तथा सफल बनाया। पद्मपुराण में एक कथा प्रकरण में स्वयं भगवती पार्वती ने वामदेव मुनि से दीक्षा प्राप्त करने की प्रार्थना की और उन्होंने उनको मंत्र उपदेश दिया :—

इत्युक्तस्तु तथा देव्या,
वामदेवो महा मुनिः।
तस्यै मन्त्रवरं श्रेष्ठं
ददौस विधिना गुरुः॥

इसी प्रकार से महाभारत के आदि पर्व में राजकुमारी पृथा की सेवा से प्रसन्न हो करके उसकी कुमारी अवस्था में ही उसको दुर्वासा मुनि से दैविक शक्तियों को आह्वाहन करने का मंत्र प्राप्त हुआ था।

तस्यै स प्रददौ मन्त्र-
मापद्धर्मान्ववेक्षया।
अभिचाराभि संयुक्तम-
ब्रवीच्चैव तां मुनिः॥

कुमारी पृथा ने श्री दुर्वासा मुनि को अपनी सेवा से प्रसन्न कर लिया था और प्रसन्न हो जाने पर उन्होंने पृथा की भावी आपत्ति को मद्देनजर रखकर मन्त्र प्रदान किया।

उसी मन्त्र के प्रभाव से देवों का आकर्षण करके वीर योद्धा पुत्रों को उसने जन्म दिया। पुराणों के अन्दर इस प्रकार के और भी प्रकरण मिलते हैं, जिनमें ऋषि-मुनियों द्वारा कुमारी व सधवा स्त्रियों को भी मन्त्र उपदेश देने का वर्णन है। गार्गी, मदलसा, मैत्रेयी आदि के उपाख्यान योग्य गुरुओं के द्वारा शिक्षा प्राप्त करने के परिचायक हैं। वन में विचरती हुई कुमारी सन्ध्या ने अपनी बाल्यावस्था में ही तप करने की इच्छा से महर्षि वशिष्ठ से मन्त्रोपदेश प्राप्त करके तप किया था जिससे उसका जीवन पावन तथा सफल हुआ और वही सन्ध्या फिर अरुन्धती के नाम से वशिष्ठ की पत्नी हुई। अस्तु, कुछ भी हो किसी भी जीव के अभ्युत्थान के लिए उसको योग्य शिक्षक के द्वारा शिक्षित होना आवश्यक है। गुरुदेव का स्वरूप शुद्ध निर्मल है और शिष्यों के अन्धकार नाश के लिए ही वे शिक्षा प्रदान किया करते हैं। शिक्षा का यदि अभाव हो जाय तो किसी भी जीव का पूर्णरूपेण उत्थान होना बहुत ही दुस्साध्य होगा। अतः स्त्री हो या पुरुष, लड़का हो या लड़की सब सद्‌शिक्षा को पाकर ही अपना अभ्युत्थान कर सकते हैं अतः सभी को समान रूप से सद्गुरु से शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करनी ही चाहिए।

स्वाध्याय प्रयोजन और प्रकार

[श्री प्रो० चन्द्रहासजी शर्मा, आचार्य एम.ए., एम.एड.]

आजकल कम पढ़े-लिखे लोगों की बात ही क्या अपने को ज्ञान का भंडार समझने वाले भी स्वाध्याय के अभाव में अज्ञान और मृत्यु के शिकार हो रहे हैं। जिसका दुष्परिणाम यह है कि जन-साधारण में भ्रान्त तथा कपोल-कल्पित बातों का प्रचार बढ़ता जा रहा है तथा जन-जीवन चिन्तन-विहीन गतानुगतिक भेड़-चाल का अनुसरण कर रहा है। एक समय था जब 'काव्य-शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्' अर्थात् बुद्धिमानों का समय काव्य-शास्त्र के स्वाध्याय एवं उसकी चर्चा में व्यतीत होता है, यह उक्ति जनरुचि का परिचय देती थी। किन्तु आजकल अधिकांश में 'व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा' अर्थात् मूर्ख लोगों का समय जुआ, ताश, गपशप या सोने में तथा एक दूसरे से तू-तू मैं-मैं करने में व्यतीत होता है। ऐसे व्यक्ति अपना भविष्य तो बिगाड़ते ही हैं साथ ही पर निन्दा द्वारा वातावरण को ऐसा विषाक्त बना देते है कि दूसरे जिज्ञासु व्यक्तियों को ऐसे समाज में रहते हुए चिन्तन का अवसर नहीं मिल पाता। समाज में ऐसे धुरंधरों की कमी नहीं जो 'आप न देहि चुल्लू भर पानी तिन्ह निन्दहि जिन गंगा आनी' इस वृत्ति में सिद्धहस्त हैं। जो बड़े सुन्दर लहजे में कहते सुने जाते हैं :—

यदपि पठितव्यम् सोऽपि मर्तव्यं नापठितम् सोऽपि मर्तव्यं तर्हि दन्त कटाकट किम् कर्त्तव्यम्।

ऐसे व्यक्ति देह बुद्धि से उदर-पोषण को जीवन का चरम लक्ष्य मानकर रात-दिन हाय-तोबा करते हुए पापी पेट की गुलामी करते रहते हैं। ऐसे पुरुषों को सम्बोधित करके ही भर्तृहरि ने कहा है :—

येषां न विद्या तपो न दानं,
ज्ञानं न शीलं गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि-भार-भूता,
मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति॥

अर्थात जिन व्यक्तियों में विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील, गुण तथा धर्माचरण नहीं है वे पृथ्वी पर भार स्वरूप बनकर इस संसार में

मनुष्य की शक्ल में मानो मृग विचरण कर रहे हों।

स्वाध्याय के अभाव में जहाँ नाना प्रकार का अज्ञान, कुरीतियाँ, विदेशी प्रभाव अपना असर लाने लगते हैं वहाँ व्यक्ति में अहंकार भी नित्य प्रति पुष्ट होता चला जाता है। शास्त्रों का अभ्यास करने वाला कितना विनम्र बन जाता है। वह समझ जाता है कि जो कुछ वह जानता है वह समुद्र में बिन्दु की तरह है फिर सर्वज्ञता का अहम कैसा? किन्तु स्वाध्याय विमुख व्यक्ति अपनी सांस्कृतिक परम्परा तथा दूसरे के अनुभव से लाभ लेने से वंचित तो रहता ही है दूसरी ओर उसमें अज्ञानजन्य अहंकार, दम्भ, पाखण्ड और मत्सर कूट-कूट कर भर जाते हैं। वह सोचता है कि संसार में जितनी बुद्धि है उसमें आधी तो मेरे पास है और एक चौथाई में संसार है शेष एक चौथाई खुदा के पास है। उसकी दशा एक कवि द्वारा वर्णित व्यक्ति की भाँति होती है जो।—

यदा किंचिद् ज्ञोऽहं
द्विप इव मदान्धः समभवम्।

अर्थात् जब कुछ जानता हूँ तो हाथी की तरह मदान्ध हो जाता हूं पर जब विद्वानों के समीप गया और स्वाध्याय किया तो मेरा मद ज्वर की तरह उतर गया और मैं समझने लगा कि मैं महामूर्ख हूं। शैली ने ठीक ही कहा है :—

'जितना ही हम अध्ययन करते हैं उतना ही हमको अपने अज्ञान का आभास होता जाता है।'

डा० राधाकृष्णन् का कथन है कि हम जितना कम पढ़ते हैं हम उतने ही अहंकारी बनते हैं, कुछ अधिक पढ़ने पर आश्चर्य करने लगते हैं और निरन्तर स्वाध्याय रत रहने पर हम श्रद्धालु एवं नम्र बनते जाते हैं।

आजकल एम. ए. करने के बाद अध्ययन की इति समझ ली जाती है। लोग समझने लगते हैं कि अब कुछ भी ज्ञातव्य अवशिष्ट नहीं है। पर सच यह है कि इसके पश्चात् ही अध्ययनकाल प्रारम्भ होता है। जैसे गाय चारा खाने के बाद जुगाली करती है तब चारा रस में परिणत होता है उसी प्रकार अध्ययन के पश्चात् स्वाध्याय एवं मनन द्वारा विद्या वीर्यवती हो पाती है। विद्या की चार दशायें बताई गई हैं :—

अधीत बोधाचरण प्रचारणैः।

अर्थात् आगम काल (अध्ययन काल) बोध काल (स्वाध्याय काल) आचरण काल तथा प्रचार काल।

आज प्रचारकों की बाढ़ सी आई हुई है? स्वाध्याय की उनके जीवन में उपेक्षा दिखाई पड़ती है। यदि स्वाध्याय को छोड़ दिया जाय तो निरन्तर विकासमान ज्ञान के क्षितिज से मनुष्य का सम्बन्ध सूत्र टूट जाता है और वह देश-काल तथा परिस्थिति से अनभिज्ञ होकर उनका स्वामी न रहकर दास हो जाता है। जो भी ज्ञान उसने प्राप्त किया है वह 'अनभ्यासे विषं विद्या' अर्थात बिना स्वाध्याय के विद्या विष के समान है इसीलिए संत-शिरोमणि

तुलसीदास ने कहा है :—

'शास्त्र सुचिंतित पुनि-पुनि देखिय।'

वास्तव में ज्ञान-विज्ञान से तृप्त होकर उससे ऊपर उठकर ही निःश्रेयस की प्राप्ति हो सकती है। श्रीमद्भगवद्गीता में स्वाध्याय को ज्ञान-यज्ञ कहा गया है :—

द्रव्ययज्ञास्तपो यज्ञा,
दान यज्ञास्तथापरे।
स्वाध्याय ज्ञान यज्ञाश्च,
यतयः संशितव्रता ॥

—अ० ४ श्लोक १

अर्थात् विभिन्न प्रकारके यज्ञ द्वारा व्यक्ति निःश्रेयस के मार्ग में आरूढ़ होते हैं। कुछ घी सामग्री से अग्नि में आहुतिरूप यज्ञ द्वारा कुछ तप तथा कुछ दान-यज्ञ से तथा उच्चस्तर के प्राणी स्वाध्याय रूपी ज्ञान-यज्ञ द्वारा अपनी लक्ष्य-प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील होते हैं।

स्वाध्याय क्यों ?

स्वाध्याय द्वारा ज्ञान-राशि को संचित धरोहर के रूप में हमें बहुमूल्य अनुभव अनायास ही मिल जाते हैं अन्यथा पूर्व महापुरुषों द्वारा निर्दिष्ट सत्य की खोज में हमें भी व्यर्थ में अपना समय लगाना पड़े और अन्त में उसी लक्ष्य पर आना हो जिसे हम दूसरों के अनुभव द्वारा स्वयं सीख सकते हैं। आज जो बड़ी-बड़ी खोज और आविष्कार तथा मानव की सुख-सुविधा के साधन दिखाई पड़ते हैं सभी स्वाध्याय और चिन्तन के ही परिणाम हैं। इस प्रकार लौकिक लाभ इतना अधिक है कि स्वाध्यायशील व्यक्ति कुबेर की सम्पत्ति का मालिक स्वयं बन जाता है। अंग्रेजी निबन्धकार बेकन ने एक जगह कहा है :—

"Crafty men condemn studies simple men admire and wise men use them ? तथा Studies serve for delight, for ornamentation and for ability."

अर्थात् मूर्ख लोग स्वाध्याय को हेय समझते हैं, सीधे-सादे जन स्वयं तो स्वाध्याय नहीं कर पाते पर उसकी प्रशंसा अवश्य करते हैं किन्तु बुद्धिमान व्यक्ति स्वाध्याय-परायण होते हैं। तथा स्वाध्याय से आनन्द प्राप्त होता है, अलंकरण होता है तथा योग्यता बढ़ती है। स्वाध्याय के द्वारा अप्राप्य की प्राप्ति तथा ज्ञान की पिपासा शान्त होती है। जिस प्रकार शरीर को स्वच्छ रखने के लिए पौष्टिक भोजन की आवश्यकता है उसी प्रकार मन की शुद्धि तथा मस्तिष्क की स्वस्थता के लिए स्वाध्याय अपेक्षित है। स्वामी शिवानन्द ने ठीक ही कहा है—'सद्ग्रन्थ इस लोक के चिन्तामणि हैं। उनके अध्ययन से सब चिन्तायें मिट जाती हैं। संशय पिशाच भाग जाते हैं और मन में सद्भाव जाग्रत होकर परम शान्ति प्राप्त होती है।' स्वाध्याय से ग्रीष्मऋतु के थपेड़ों में भी शीतऋतु के शैत्य का आनन्द लिया जा सकता है। चरित्र-निर्माण में स्वाध्याय का सबसे बड़ा योग है। महापुरुषों का जीवन नवयुवकों में वीरपूजा की भावना का विकास करता है तथा अनुकरण, विवे-

चन या सह अनुभूति के माध्यम से अन्तःकरण शुद्ध होकर सत्वोद्रिक होने लगता है तथा मलिनता के दोष दूर होने लगते हैं। शुद्ध अन्तःकरण में ही परमानुभूति हो सकती है। जब तक दोष क्षीण नहीं हुए तब तक धूलि धूसरित दर्पण में जिस प्रकार प्रतिबिम्ब नहीं दिखाई पड़ता उसी प्रकार आत्म-दर्शन नहीं होते। मीमांसाकार ने इष्ट अर्थ की उत्पत्ति के लिए स्वाध्याय की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि— 'स्वाध्यायोऽध्येतव्य' अर्थात् शास्त्र, अर्थ ज्ञानरूप इष्टार्थ को उत्पन्न करने के लिए स्वाध्याय करना चाहिए। महाभाष्यकार पतंजलि ने ब्राह्मण का स्वाध्याय निष्कारण धर्म ही कहा है:—

ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः
षडङ्गो वेद ज्ञेयोऽध्येयश्च ।

अर्थात् ब्राह्मण को अपना धर्म समझकर छः अंगों सहित वेद को पढ़ना और समझना चाहिए।

स्वाध्याय के सोपानः—

श्रीमद् भगवद् गीता में जगदात्मा श्रीकृष्ण ने कहा है कि जो ज्ञान-विज्ञान से तृप्त हो गया है तथा जिसे आत्म-तत्व के बारे में किसी प्रकार का संशय, विपर्यय, मिथ्या आदि शंकास्पद ज्ञान न होकर निश्चयात्मक ज्ञान हो गया है वह पर्वत की चोटी पर स्थित व्यक्ति की भाँति जगत् को देखकर आत्म-दर्शन की ओर अग्रसर होता है। श्री राम कृष्ण परमहंस कहा करते थे कि चौपड़ की गोट जब तक सभी घरों में नहीं घूम लेती तब तक पकती नहीं। सांख्य-दर्शनकार की भी यही मान्यता है कि— 'व्यक्ताऽव्यक्तज्ञ विज्ञान से ही मुक्ति होती है। अतः ज्ञान नेत्र होना आवश्यक है। ज्ञान तृप्त होना आवश्यक है। प्राणी स्वाध्याय द्वारा ज्ञान नेत्र तथा ज्ञान तृप्त होना है।

मनुष्य के मन में सदैव से ये प्रश्न उठते रहे हैं। मैं कौन हूं? यह जगत क्या है? इसका क्या प्रयोजन है? मेरा जगत से क्या प्रयोजन है? क्या मैं जैसा दीख रहा हूं वैसा ही हूं या इससे कुछ भिन्न मेरा रूप है? मुझसे परे कोई सत्ता है या नहीं। समस्त ज्ञान-विज्ञान इन्हीं प्रश्नों के उत्तरों की प्रक्रिया है। वेद-शास्त्र आदि भी सत्य का अन्वेषण है। यदि संसार में ज्ञान-विज्ञान का विश्लेषण करें तो कुछ विषय जैसे मनोविज्ञान, दर्शन, तर्क, नीतिशास्त्र, नृतत्वशास्त्र, भाषा, साहित्य, आदि मनुष्य के अन्दर-बाहर क्या है, इत्यादि का विवेचन है। प्राकृतिक विज्ञान, नक्षत्रविज्ञान, भूविज्ञान व स्पतिविज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, अणु विज्ञान, रसायन विज्ञान आदि जगत् के तत्वों का विश्लेषण एवं संश्लेषण का अन्वेषण मात्र है। इसी प्रकार सामाजिक विज्ञान, इतिहास, राजनीति, समाज नीति, नागरिक शास्त्र, भूगोल मानव के वातावरण के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया का अध्ययन है। गणित आदि देश काल वस्तु आदि की संख्या का निर्धारण है। इस प्रकार समस्त ज्ञान-विज्ञान इसी कोटि में आते हैं। इनका अध्ययन करना स्वाध्याय की छोटी कोटि है।

योग में स्वाध्याय :—

मध्यम कोटि का स्वाध्याय योग-दर्शन में वर्णित क्रिया योग का अंग स्वाध्याय है।

तपः स्वाध्यायेश्वर,
प्रणिधानानि क्रियायोगाः।

—साधनपाद

अर्थात् तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान क्रिया योग है। क्रिया योग का अर्थ है साधन रूप उपाय। इन उपायों से चित्त शुद्धि होती है चित्त शुद्धि के दो उपाय योग-वाशिष्ठ में बताये गये हैं :—

द्वौ क्रमौ चित्तनाशाय
योगो ज्ञानं च राघव।
योगो वृत्ति निरोधो हि
ज्ञानं सम्यक् अवेक्षणम्॥
असाध्यः कस्यचिद् योगो
ज्ञानं कस्यचिदेव च॥
प्रकारौ द्वौ ततः साक्षात्
जगाद परमः शिवः॥

चित्त में सब वासनायें संचित होती हैं। वासना से ही भव-जन्म और दुःख होता है अतः जैसे चित्त के बनने की सम्भावना को ही नष्ट करना हो तो चित्त का आधार नष्ट कर देना चाहिये। उसी प्रकार वासना की जननी वृत्ति का निरोध करने के अधिकारी भेद से दो उपाय कहे गये हैं। समाधि तथा तत्व का वास्तविक ज्ञान। इसमें किसी के लिए योग कठिन होता है, ज्ञान सरल या ज्ञान कठिन योग सरल। इसीलिए भगवान सदाशिव ने योग और ज्ञान दोनों का उपदेश किया है।

योग सूत्र में दो बार साधनपाद में स्वाध्याय का जिक्र किया है। एक क्रिया योग के प्रसंग में जिसका वर्णन ऊपर हो चुका। दूसरे नियमों के अन्तर्गत स्वाध्यायको ईश्वर प्रणिधान से पहले कहा गया है :—

शौच सन्तोष तपः स्वाध्याय
ईश्वर प्रणिधानानि नियमाः।

स्वाध्याय शब्द की व्याख्या करते हुए भगवान व्यासदेव जी ने कहा है कि अध्यात्म सम्बन्धी विवेक ज्ञान उत्पन्न करनेवाले वेदोपनिषदादि सत्शास्त्रों का नियमपूर्वक अध्ययन और ऊंकार सहित गायत्री आदि मंत्रों का जप करना स्वाध्याय है। अध्यात्म शास्त्रों का श्रवण-मनन और निदिध्यासन करना स्वाध्याय की दूसरी मध्यम सीढ़ी है तथा मन्त्र-जप करते हुए अजपा जाप करते हुए वृत्ति को ब्रह्माकार कर देना उच्चकोटि का स्वाध्याय है। सीढ़ी-दर-सीढ़ी चलने पर ही छत पर पहुंचा जाता है। मुण्डकोपनिषद् में परा तथा अपरा विद्या के प्रसंग में ज्ञान की अनिवार्यता पर इसी आशय से प्रकाश डाला गया है—"द्वे विद्ये वेदितव्यो इति हस्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति, परा चैव अपरा।" अर्थात् दो विद्यायें जाननी चाहिए, ऐसा ब्रह्म को जानने वाले कहते हैं—एक परा दूसरी अपरा। परा के द्वारा अक्षर का विवेक होता है तथा अपरा से लौकिक व्यवहार का ज्ञान होता है। परा में वेदादि शास्त्र

है तथा अपरा में लौकिक साहित्य विज्ञानादि हैं।

स्वाध्याय का फल :—

योगदर्शन में भगवान पतंजलि ने स्वाध्याय का फल बताया है—'स्वाध्यायात इष्ट देवता सम्प्रयोगः।' भगवान् व्यासदेव ने इस सूत्र पर भाष्य करते हुए लिखा है कि—'स्वाध्यायशील को देवता, ऋषियों तथा सिद्धों के दर्शन होते हैं और वे उसके योग कार्यों में सहायक सिद्ध होते हैं।' अज्ञान और दुःख का जन्म पुरुष के द्वारा होता है और उसका नाश भी पुरुषार्थ द्वारा होता है। अतः विवेक द्वारा चित्त शुद्ध करना चाहिए। चित्त की शुद्धि होने पर धारणा, ध्यान और समाधि सम्भव है। शास्त्रों के स्वाध्याय से ज्ञान होता है और ज्ञान होने पर नित्य अनित्य वस्तु विवेक होकर वैराग्य हो जाता है। योगवाशिष्ठ में महर्षि वशिष्ठ मन की पवित्रता के लिए पहले शास्त्राभ्यास तथा सत्संग फिर वैराग्य का अभ्यास करने का उपदेश देते हैं :—

पूर्वं राघव शास्त्रेण
वैराग्येण परेण च।
तथा सज्जन संगेन
नीयतां पुण्यतां मनः॥

शास्त्राभ्यास से निर्मल मति होती है :—

शास्त्रसज्जन सत्कार्य
संगेनोपहृतैनसाम्।
सारावलोकिनी बुद्धि-
र्जायते दीपकोपमा॥

—योगवाशिष्ठ ५।५।५

हे राम! शास्त्र के अध्ययन, सज्जनों की संगति तथा शुभ कार्यों से पाप क्षीण होकर तत्त्व का ग्रहण करनेवाली दीपक के समान प्रकाशवाली बुद्धि का उदय होता है।

शास्त्राभ्यास करते रहने पर चित्त शुद्ध होकर उसमें स्वतः ही परमात्मा प्रकाशित होने लगते हैं। शास्त्र को इसीलिए नेत्र कहा गया है—'सर्वस्य लोचनं यस्य नास्ति अन्धः स एव।' अर्थात सभी मनुष्यों का नेत्र शास्त्र है जिसके पास शास्त्र ज्ञान नहीं है वह अन्धा है। क्योंकि शास्त्र द्वारा निर्दिष्ट रीति से विधि-निषेध का अभ्यास और योग करने से चित्त शुद्धि होकर चित्त में परमतत्त्व का दर्शन स्वतः हो जाता है। परमात्मा के दर्शन में शास्त्र ही दृष्टि की तरह हेतु बनता है। शास्त्र ऋषियों का सुपरीक्षित सम्यग् ज्ञान है जिसमें किसी प्रकार का संशय या विपर्यय नहीं हो सकता। योगवाशिष्ठ में कहा गया है कि जैसे आम धीरे-धीरे पकता है उसी प्रकार मन स्वाध्याय से विवेकयुक्त होकर समाधि के लिए धीरे-धीरे तैयार हो जाता है। ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय ज्ञान से ही होता है। प्रज्ञा के उदित होते ही सर्व दुःख निवृत्ति हो जाते हैं :—

ज्ञानेन सर्वं दुःखानां
विनाश उपजायते।
ज्ञानवान् उदितानन्दो
न क्वचिद् परिमज्जति॥

—योगवाशिष्ठ

आत्मा का ज्ञान होने पर अज्ञानजन्य सब दुःख उसी प्रकार दूर हो जाते हैं जैसे

विष का असर चले जाने पर विषूचिका रोग शान्त हो जाता है। तत्त्ववान् को ही परमानन्द की प्राप्ति होती है और कहीं डूबता नहीं है।

अद्वयतारोपनिषद् में स्वाध्याय का फल मोक्ष तथा अनेक सिद्धियों की प्राप्ति बतलाया गया है:—

यः सकृदुच्चारयति
तस्य संसार मोचनं भवति।
सर्वजन्म कृतं पापं
तत्क्षणादेव नश्यति॥
सर्वान् कामानवाप्नोति
सर्व पुरुषार्थ सिद्धि भवति।

अर्थात् जो स्वाध्याय करता है उसका संसार से मोक्ष हो जाता है तथा जन्म-जन्मान्तरों के पाप तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं। सभी कामनायें पूरी होती हैं तथा धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की सिद्धि होती है। अक्षरों के रूप में तथा भावों के रूप में महापुरुषों के अच्छे परमाणु हमारे चारों ओर व्याप्त होकर हमारे बाधक परमाणुओं को दूर कर देते हैं।

शास्त्र ज्ञान से कर्म, अकर्म, विकर्म आदि का भेद आसानी से समझ में आ जाता है। जिससे निष्काम कर्म की ओर प्रवृत्ति हो जाती है। पुण्य-पाप का संचित कोष भी क्षीण हो जाता है। ब्रह्मविद्योपनिषद में इस भाव को इन शब्दों में स्पष्ट किया गया है:—

गृहस्थो ब्रह्मचारी वा
वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः।
यत्र तत्र स्थितो ज्ञानी
परमाक्षरवित् सदा॥
—ब्रह्म० २०।४७

विषयी विषया सक्तो,
याति देहान्तरे शुभम्।
ज्ञानादेवास्य शास्त्रस्य
सर्वावस्थोऽपि मानवः॥

अर्थात् गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ या भिक्षुक कहीं भी रहते हुए परा विद्या का स्वाध्याय करते रहते हैं वहीं उनका कल्याण होता है। विषयों और विषयासक्त मानव का भी शास्त्राभ्यास से अगला जन्म सुधर जाता है। इस प्रकार हर अवस्था में स्वाध्याय ज्ञानवान् बना देता है और मोक्ष मार्ग का अधिकारी बना देता है।

अध्ययन ही पर्याप्त नहीं आचरण से लाभ होता है:—

केवल तोतारटन या सुन्दर लय ताल में पढ़ने से कल्याण नहीं होगा, जो ज्ञान क्रिया में, आचरण में नहीं उतरा वह 'ज्ञान भारः क्रिया बिना' ही है तथा वह अंधे के हाथ में रखा दीपक है। उसके उपदेश से चाहे दूसरों का कल्याण हो किन्तु उसका आत्मोद्धार नहीं हो सकता। योगतत्त्वोपनिषद् में ज्ञान और योग के समन्वय पर जोर दिया गया है। जो राम का गुणानुवाद गाता रहता है और आचरण रावण का करता है उसको कुछ लाभ नहीं होगा। योग रहित ज्ञान मोक्षदायक नहीं हो सकता।

योग हीनं कथं ज्ञानं,
मोक्षदं भवति ध्रुवम्।

योगोऽपि ज्ञान हीनस्तु,
न क्षमो मोक्ष कर्मणि ॥
तस्मात् ज्ञानं च योगं च,
मुमुक्षुर्दृढमभ्यसेत् ।

—योग तत्वोपनिषद्

अर्थात् योग के बिना ज्ञान मोक्षदायक नहीं हो सकता अतः मुमुक्षु को ज्ञान तथा योग दोनों का अभ्यास करना चाहिये। केवल एक का अभ्यास करने से दोषों का नाश नहीं होता।

स्वाध्याय किन ग्रंथों का ?

यह बताया जा चुका है कि स्वाध्याय से वासना जन्य दोषों का विरेचन तथा मार्गान्तरीकरण होकर परिशोधन हो जाता है और चित्त शुद्धि हो जाती है तथा सत्वोद्रेक होने लगता है। स्वाध्यायमें कहानी, उपन्यास, नाटक, सिनेका के गान भी तब लाभ देसकते हैं जब उनमें लोकोत्तर चरित्रों का वर्णन हो जिनको पढ़कर अश्रुपात तथा रोमांच एवं अंगस्फुरण होने लगे। जिनको पढ़कर जीवन की वृत्ति सत्वोन्मुख हो जाय। अन्यथा साहित्य मस्तिष्क के लिये विष का काम करता है। साधकों की जिज्ञासा के निमित्त यहाँ कुछ अध्यात्म सम्बन्धी विवेक ज्ञान उत्पन्न करने वाले ग्रन्थों की सूची प्रस्तुत करता हूं जिनका सतत् स्वाध्याय करने से अवश्य लाभ होगा। अपवाद हर जगह हो सकते हैं। मलयवायु के संस्पर्श से सभी वृक्ष चन्दन के वृक्ष बन जाते हैं पर बांस के पेड़ वैसे ही बने रहते हैं। उसी प्रकार जो मूढ़ और घोर नारकीय जीव हैं वे कुत्ते की दुम की भांति रहते हैं। स्वाध्याय रत रहने पर उनमें श्मशान-वैराग्य हो जाता है पर दुकान या दफ्तर में पहुंचकर पुनः अपने धर्म कांटे पर अधर्म का व्यापार करने लग जाते हैं। इस प्रकार वे आत्म-हनन करते हैं। फिर भी उनका प्रारब्ध इससे क्षीण होता है। उत्तम, मध्यम तथा मंद बुद्धि के अधिकारी की दृष्टि से ग्रन्थों का यहाँ उल्लेख है :—

वेद, उपनिषद् विशेषकर मांडूक्य, ईशावास्योपनिषद्, छान्दोग्य, श्रीमद्भगवद्गीता (विशेषकर अध्याय २, ५, १२) रामचरित मानस (सुन्दर काण्ड, उत्तर काण्ड) महाभारत (वन पर्व, शान्ति पर्व आदि) श्रीमद्भागवत (एकादश स्कन्ध) पुराण, गर्भ गीता, अवधूत गीता, अष्टावक्र गीता, पंचदशी, सांख्य दर्शन, पातंजलि योग-दर्शन, वेदान्त दर्शन, वैराग्यशतक, योगवाशिष्ठ, योगोपनिषद, हठयोग प्रदीपिका। सन्तों की वाणी जैसे कबीर, नानक बीजक, दादू सुन्दरदास की वाणी, रज्जब-वाणी, सूर के पद, मीरा के पद, रसखान के कवित्त। स्तोत्र साहित्य, यथा शिव महिम्ना स्तोत्र, विष्णु सहस्रनाम, गोपाल सहस्रनाम, दुर्गा सप्तशती, स्तोत्र आदि तथा नानक वाणी, बाइबिल, कुरान आदि।

शास्त्र ज्ञान का त्याग कब ?

शास्त्र ज्ञान के आगे की भूमिका में पहुंचने के लिए शास्त्र ज्ञान को छोड़ना आवश्यक है। शास्त्र ज्ञान में भी अहंकार पुष्ट होने लगता है और उसकी प्रगति रुक जाती है। जब अन्तःकरण शुद्ध हो गया तब शास्त्रों के

स्वाध्याय का कार्य पूरा हो गया। बुद्धि को तर्क जाल में फँसाने की आवश्यकता नहीं। अन्यथा सारा श्रम व्यर्थ हो जायगा। अमृत नादोपनिषद् में कहा गया है कि जैसे मार्ग में चलने के लिए रथ की जरूरत है किन्तु गन्तव्य स्थान तक पहुंचकर रथ को छोड़कर ही जाना होता है।

तावद्रथेन गन्तव्यं
यावद्रथ पथि स्थितः।
स्थित्वा रथपथि स्थानं
रथमुत्सृज्य गच्छति॥

मशाल को हाथ में लेकर जैसे वस्तु को ढूंढकर मशाल छोड़ वस्तु का ग्रहण कर लेते हैं उसी तरह ज्ञेय की प्राप्ति होने पर ज्ञान को छोड़ देना चाहिये। ब्रह्म विद्योपनिषद् में वेद शास्त्रों को पैर की धूलि की तरह त्यागने की बात कही गई है। किन्तु यह बहुत ऊँची दशा पर पहुंचने की बात है। देखिये:—

उल्का हस्तो यथा कश्चिद्
द्रव्य मालोक्य तां त्यजेत्।
ज्ञानेन ज्ञेय मालोक्यं
पश्चात् ज्ञानं परित्यजेत्॥

स्वाध्याय और गुरुभक्ति :—

आवरण हटाकर ही अहंकार का बीज नाश हो सकता है अतः ब्रह्मविद्योपनिषद में कहा गया है :—

देह जात्यादि सम्बन्धान्
वर्णाश्रम समन्वितान्।
वेद शास्त्र पुराणानि
पद्पांसुमिव त्यजेत्॥
गुरु भक्ति सदा कुर्याद्
श्रेयसे भूयसे नरः।

अर्थात् देह, जाति, वर्णाश्रम तथा वेद-शास्त्र, पुराणादि को पैर की धूल की तरह छोड़कर गुरुभक्ति करनी चाहिए उससे ही परमपद की प्राप्ति हो सकेगी। हमारे आर्य-समाजी भाई वेदों को छोड़ने की बात पर चौंक सकते हैं। पर किया क्या जाय तर्क-जाल से निष्कल, निर्मल, शान्त, सर्वातीत सर्वेश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती वह तो गुरुदेव भगवान् सदाशिव की कृपा से ही हो सकती है। योगशिखोपनिषद् स्पष्ट घोषणा करता है।—

पतिताः शास्त्र जालेषु
प्रज्ञया तेन मोहिताः।
स्वात्म प्रकाशरूपं तत्
किं शास्त्रेण प्रकाश्यते॥
निष्कलं निर्मलं शान्तं
सर्वातीतं निरामयम्।
तदेव जीवरूपेण
पुण्य पाप फलैर्वृतम्।
परमात्मपदं नित्यं तत्
कथं जीवतां गतम्॥
तत्त्वातीतं महादेव
प्रसादात् परमेश्वर।

अमृत बिन्दूपनिषद् में इसी प्रकार का एक उदाहरण देकर यह बात और स्पष्ट की गई है। जैसे नदी पार होने पर नौका

की अपेक्षा नहीं होती वैसे ही शुद्धान्तःकरण के बाद ज्ञान-विज्ञान की आवश्यकता नहीं रहती। जैसे धान्य चाहनेवाला भूसे को छोड़ देता है, अनाज को ग्रहण कर लेता है उसी प्रकार स्वाध्याय के अभ्यास द्वारा विवेक ज्ञान होने पर स्वाध्याय को छोड़ देना चाहिए। देखिये :—

> ग्रंथमभ्यस्य मेधावी
> ज्ञान विज्ञान तत्परः।
> पलालमिव धान्यार्थी
> त्यजेद् ग्रंथमशेषतः॥

परमहंस श्री रामकृष्ण ने एक सुन्दर दृष्टान्त द्वारा यही बात को साधकों को समझायी थी। जैसे हमारे पास किसी का पत्र आया कि अमुक स्थान पर पहुंच कर अमुक से मिलना है। हम पत्र को पढ़कर फेंक देते हैं और उसमें लिखी हुई क्रिया करने लगते हैं। उस व्यक्ति से मिलकर वह क्रिया भी समाप्त हो जाती है।

सभी धर्मों के ग्रंथ उस तत्व के बारे में एक मत हैं :—

लोगों के मन में यह शंका हो सकती है कि नाना प्रकार के ग्रंथ पढ़ने से परस्पर विरोधी विचारधारा से नानात्व व्यवसायित्मा बुद्धि उत्पन्न हो जायगी। ऐसी दशा में समाधिसिद्धि कैसे होगी। साधनों के बारे में देश, काल, परिस्थिति तथा अधिकारी भेद से कुछ भेद हो सकता है, नामरूपात्मक व्याख्यान का भेद हो सकता है पर सब शास्त्रों का लक्ष्य है एक ही तत्व। उनमें बड़ापन और छोटापन कुछ भी नहीं है। विभिन्न शास्त्रों के अध्ययन से यह निश्चय हो पाता है कि ईश्वर है अतः उसको प्राप्त करने का उपाय करना चाहिए। जिसे खुद देखा नहीं, दूसरों से सुना नहीं तब तक उस वस्तु के अस्तित्व में सन्देह बना ही रहता है। सभी शास्त्र विभिन्न नीतियों से एक ही सत्ता का उस प्रकार उपदेश देते हैं जैसे :— अनेक रंगों वाली गायों का दूध सफेद ही होता है तथा दूध में घृत मन्थन द्वारा प्राप्त होता है गाय द्वारा नहीं। अमृत बिन्दूपनिषद्कार कहते हैं :—

> गवामनेक वर्णानां
> क्षीरस्याप्येकवर्णता।
> क्षीरवत् पश्यते ज्ञानं
> लिंगिनस्तु गवां यथा॥
> घृतमिव पयसि निगूढं
> भूते-भूते च वसति विज्ञानम्।
> सततं मनसि मन्थयितव्यं
> मनोमन्थान भूतेन॥

शास्त्रों का ज्ञान ही ईश्वर की प्राप्ति नहीं

आत्मा के द्वारा ही आत्मा का उद्धार होता है। ग्रन्थों की पूजा से कुछ काम नहीं बनेगा। शास्त्रों की दौड़ त्रिवर्ग तक है— धर्म, अर्थ, काम तक। मोक्ष बन्दे के अपने अभ्यास द्वारा ही होगा। 'ज्ञानस्य विषयो हि अन्यः फलमन्यदुदाहृतम्' अर्थात् ज्ञान का विषय उसके फल से भिन्न होता है। शास्त्राभ्यास ज्ञान का विषय है और उसका फल

विवेक ज्ञान या 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' की प्राप्ति है। शास्त्र ज्ञान के अनुसार अभ्यास और योग करने से चित्त शुद्ध होता है। योगवाशिष्ठ में ऋषि वशिष्ठ अपने प्रिय शिष्य राघवेन्द्र से कहते हैं :—

वर्णं त्रयोपदेशो हि
शास्त्रादिष्वस्ति राघव।
ब्रह्मप्राप्तिस्तु अवाच्यत्वात्
नास्ति तच्छासनेष्वपि॥

अर्थात् शास्त्र में तीन वर्णों का ही उपदेश है। ब्रह्म-प्राप्ति का विषय अवाच्य होने से शास्त्र में नहीं मिलता। उपनिषदों में भी कहा गया है कि :—

'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते स तेन लभ्यः —।

अर्थात् आत्म-तत्व की प्राप्ति प्रवचनों के द्वारा प्राप्त नहीं होती और न कुशाग्र बुद्धि के द्वारा न शास्त्र-श्रवण से बल्कि आत्मा जिसको स्वयं वरण करता है उसे ही आत्म तत्व की प्राप्ति होती है। फिर भी आत्म ज्ञान निरर्थक नहीं है।

अविद्या से ही अविद्या का नाश होता है।

यो मुमुक्षोरविद्यांशः
केवलो नाम सात्विकः।
सात्विकैरेव सोऽविद्या-
भागैः शास्त्रादि नामभिः॥
अविद्यां श्रेयसाऽश्रेष्ठां
क्षालयन् इह तिष्ठति।
मलं मलेनापहरन्
युक्तिज्ञो रजको यथा॥

—योगवाशिष्ठ ४१। ५-६

अर्थात् मोक्ष चाहनेवाले अधिकारी की सात्विक अविद्या शास्त्रादि सात्विक अविद्या द्वारा कट जाती है। जैसे धोबी युक्तिपूर्वक मैल को रेह से ही साफ करता है वैसे ही मुमुक्षु अविद्या को सात्विक अविद्या (शास्त्र-ज्ञान) से दूर करता है जैसे कांटे से कांटा निकाल कर दोनों कांटे फेंक दिये जाते हैं वैसे ही सात्विक अविद्या से तामसिक अविद्या निकालकर दोनों ही त्याज्य हो जाते हैं। अविद्या के क्षीण होने पर आत्मा आत्मा का विचार करता है और आत्मा को जान लेता है। जैसे गन्ने में विद्यमान रस को चूसकर मनुष्य स्वानुभूति द्वारा उसका रस लेता है, वैसे ही शास्त्रों के आत्म ज्ञान को स्वानुभूति का विषय बनाकर प्राणी मुक्त होता है। उदाहरणार्थ शास्त्रों में लिखा है—'यो वै भूमा तत्सुखम् नेतरेषाम्' अर्थात् जो भूमा है उसे सर्वथा सुख ही सुख है, आदि-आदि। जब तक मनुष्य को भूमात्व की प्राप्ति रूप अनुभूति नहीं होती तब तक सुख की प्राप्ति भी नहीं होगी। केवल कल्पना में एक ऐसे विचार का स्फुरण अवश्य हो जायगा—कि मनुष्य ऐसी भी स्थिति प्राप्त कर सकता है जहां दुःखों का बिल्कुल नाश हो जाता है।

योगवाशिष्ठकार महर्षि वशिष्ठ का मत है कि आत्मा शास्त्र द्वारा या गुरूपदेश के द्वारा नहीं जाना जा सकता जब तक अपना पुरुषार्थ न हो। साथ ही यह भी सत्य

है कि :—

> गुरूपदेश शास्त्रार्थैः
> विना चात्मा न बुध्यते।
> एतत्संयोग सत्त्वैव
> स्वात्मज्ञान प्रकाशिनी॥

अर्थात् गुरु के उपदेश और शास्त्र के अध्ययन के बिना भी आत्म-ज्ञान नहीं होता। अधिकारी, शास्त्र और गुरु इन तीनों का संयोग होने पर ही आत्मानुभव का प्रकाश होता है। अतः स्वाध्याय द्वारा अपने चित्त के मलों का प्रक्षालन करना चाहिए तभी योग्य गुरु की प्राप्ति हो सकेगी। जैसा अधिकारी भाव होगा वैसी ही सिद्धि होगी। वेद शास्त्र, दर्शन, पुराण सभी साधनरूप हैं इन्हें साध्य समझ लेने पर मंजिल तक पहुंचना असम्भव हो जायगा। बुद्धि तर्क जाल में उलझकर अहंकार को पुष्ट करती रहेगी। आत्म-ज्ञान की मंजिल पर पहुंचने के बाद भी समझना चाहिए कि सफर बाकी है।

मंत्र का जप भी स्वाध्याय है।

पातंजलि योग दर्शन के साधन पाद में 'तपः स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानानि क्रिया योगः' इस सूत्र की व्याख्या करते हुए भगवान व्यास ने स्वाध्याय का अर्थ अध्यात्म शास्त्रों का पठन-पाठन या ऊंकार सहित गायत्री आदि मंत्रों का जप करना लिखा है। स्वाध्याय के फल के वाचक सूत्र 'स्वाध्यायादिष्टदेवता सम्प्रयोगः' पर भाष्य लिखते हुए भोजकृति में कहा गया है कि इष्ट मंत्र के जप स्वरूप स्वाध्याय के सिद्ध होने पर योगी को इष्ट देवता का योग होता है और वह देवता प्रत्यक्ष होता है। मन्त्र जप पूर्वक प्राणायाम ध्यान व धारणा आदि करने पर सफलता अवश्य मिलती है। योग और स्वाध्याय (मन्त्र जाप) के द्वारा परमात्मा प्रकाशित होता है। कहा गया है :-

> स्वाध्यायाद् योगमासीत्
> योगात् स्वाध्याय मानयेत्।
> स्वाध्याय योग सम्पत्या
> परमात्मा प्रकाशते॥

सबसे उत्तम और सरल कोटि का सहज साध्य स्वाध्याय मन्त्र जप है। मन्त्र मन के द्वारा प्रेरित होकर प्राणों को प्रेरित करता है और मन तथा प्राणों का अपने स्वरूप में लय होने लगता है। इससे जीव अपने स्वरूप में स्थित होने लगता है। मन्त्र शक्ति के विषय में अप्रैल के अंक में लिखा जा चुका है। मन्त्र को मंत्र क्यों कहते हैं और प्रणव को मूल मन्त्र या 'मंत्राणां प्रणव सेतु' क्यों कहते हैं तथा प्रत्येक मन्त्र के पूर्व अन्य व्याहृतियों के साथ ऊंकार को क्यों लगाया जाता है यह बहुत रहस्य का विषय है। योगोपनिषद् में इन बातों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। यहाँ उसका कुछ इशारा कर देना पर्याप्त होगा।

> मननात् प्राणनाच्चैव
> मद्रूपस्य च बोधनात्।
> मन्त्र मित्युच्यते ब्रह्मन्
> मदधिष्ठानतोऽपि वा॥

अर्थात् मन को निर्विषय करने के कारण प्राण को नियंत्रित करने के कारण तथा परमात्मा के स्वरूप का वाचक (तस्य वाचकः प्रणवः योग दर्शन) होने के कारण अथवा

मूलाधार चक्र से सहस्रार चक्र तक अधिष्ठित होने के कारण नाद के स्फोट स्वरूप को मन्त्र कहा जाता है। मन्त्र जप का महत्व सब सन्तों तथा शास्त्रों ने माना है। परमात्मा के वाचक सभी नाम मन्त्र का कार्य करते हैं। उनमें भी प्रणव गायत्री मन्त्र तथा अजपा गायत्री योगी को शीघ्र सिद्धि प्रदान करने वाले मन्त्र हैं। योग चूड़ामणि उपनिषद् में अजपा गायत्री (सोऽहं हंस) के सम्बन्ध में कहा गया है :—

अजपा नाम गायत्री
योगिनां मोक्षदा सदा।
अस्याः संकल्प मात्रेण
सर्वं पापैः प्रमुच्यते॥

अर्थात अजपा गायत्री योगियों को सदा मोक्षदायक है इसके संकल्प मात्र से योगी प्रारब्ध संचीयमान और उपभुज्यमान सब प्रकार के पापों से छूट जाता है।

आत्म-ज्ञान से सब प्रकार का ज्ञान हो जाता है :—

इस विषय में सभी शास्त्र और संत एक मत हैं कि आत्म-ज्ञान हो जाने पर संसार के सभी ज्ञान-विज्ञानों का ज्ञान हो जाता है। जैसे सुवर्ण का ज्ञान हो जाने पर सुवर्ण के नाम रूपात्मक विकार कनक-कुण्डलादि का ज्ञान हो जाता है। बृहदारण्यक के याज्ञवल्क्य मैत्रेयी संवाद में इस पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है :—

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयी आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेदं सर्वं विदितम्।

अर्थात् आत्मा का ही दर्शन, मनन, निदिध्यासन करना चाहिये। उससे ही सब कुछ जान लिया जाता है। सन्त शिरोमणि तुलसीदास ने अपने पूरे जीवन का अनुभव चार पंक्तियों में बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है। उनकी मान्यता है कि वेद-पुराण का कोई अन्त नहीं। कला और छन्द का कोई पार नहीं। कहाँ-कहाँ चित्त लगाया जाय। इसलिए तुलसी कहते हैं 'सब बातन की एक बात तुलसी बताये जात जनम जो सुधारा चहो राम-नाम लीजिये।' सच भी है शास्त्र अनेक हैं विद्यायें अनेक हैं। जीवन अल्प है उसमें भी बहुत से विघ्न हैं। अतः सब छोड़कर सार तत्व को ग्रहण करने का उपाय सोचना चाहिए। अधिकारी योगाभ्यासी मन्त्र जप द्वारा ही स्व+अध्याय अर्थात् आत्म-भावना का पुनः-पुनः मनन करता है तथा 'As you think so you be come." अर्थात् 'जैसा विचार करता है वैसा हो ही भी जाता है' के सिद्धान्तानुसार योगी 'तदा द्रष्टु स्वरूपे अवस्थानम्' द्वारा निर्विकल्पक समाधि का लाभ प्राप्त करता है। स्वानुभूति की साधना करने वाले साधक के लिये जप ही वेद, शास्त्र, व्याकरणादि हैं। देखिये रज्जब संत के इस सम्बन्ध में विचार है :—

सुमिरन करैं सु शास्त्र है,
बुधि उपजै सो वेद।
विषया तजै सु व्याकरण,

रज्जब पाया भेद ॥
लिख्या पढ़्या सीखा सुण्या
जीव कह्या जब राम ।
मनसा वाचा कर्मणा
येता ही है काम ॥

मंत्र-जप क्यों ?

शास्त्राभ्यास से जिस प्रकार कल्पना प्रसूत वासना जन्य मल तथा संचित पाप नष्ट होकर चित्त में धारणा की शक्ति आती है उसी प्रकार मंत्र के द्वारा मन की शुद्धि हो जाती है । अमृत नादोपनिषद् में समाधि सिद्धि के उपायों में बताया गया है कि स्वस्तिक पद्मासन या भद्रासन लगाकर उत्तर दिशा की ओर मुख कर ओंकार पूर्वक प्राणायाम करना चाहिये तथा 'दिव्य मन्त्रेण बहुधा कुर्यात् मल विमुक्तये' दिव्य मन्त्र का जप करना चाहिये उससे चित्त के मल दूर हो जाते हैं । प्राणायाम के करने से प्रारब्ध के सब मल दूर हो जाते हैं तथा ध्यान से जन्म-जन्मान्तरों का संचित संस्कार नष्ट हो जाता है । फिर शुद्ध प्रकाश स्वरूप ज्योतिषामपि तज्ज्योति स्वरूप परमात्मा के दर्शन होते हैं । मन्त्र जप करते हुए धारणा करते जाना चाहिये मन उसी द्वार से जाना चाहता है जिसका उसको ज्ञान करा दिया जाता है । जब तक चक्रों को वेधन करके सुषुम्ना मार्ग का उसे ज्ञान नहीं होता तब तक वह इन्द्रिय द्वारों से इन्द्रियों के विषयों को मधुमक्खी की तरह संचित करता रहता है । जब मन्त्र-जप (मन्त्र की भावना करना) से उसे सुषुम्ना मार्ग में डाल दिया जाता है तो श्री मद्भगवद्गीता में वर्णित परमपद को वह प्राप्त हो जाता है। गीता के आठवें अध्याय के १३ वें श्लोक में कहा गया है कि :—

ॐ इति एकाक्षरं ब्रह्म
व्याहरन् मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं
सः याति परमां गतिम् ॥

मंत्र का जप कब और कैसे ?

प्रणव का जप निर्विकल्प समाधि का लाभ कराने में सबसे श्रेष्ठ है । जप का अर्थ है अर्थ का बार-बार अनुसंधान करना, अर्थकी भावना करना । 'तज्जपस्तदर्थ भावनम्' योग दर्शन में इसका यही अर्थ है । प्रणव मंत्र एकाक्षर ब्रह्म का वाचक है । इसका जप प्राणायाम पूर्वक करना चाहिये । जिस प्रकार एक शिकारी अपने लक्ष्य में शरसंधान करता है । उसे अपने लक्ष्य के अतिरिक्त कुछ नजर नहीं आता वैसे ही प्राणायाम द्वारा प्राण मन की गति को नियंत्रित करके ॐकारका जप करना चाहिये । एक रूपक द्वारा श्रुतियों में इसी बात को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है :—

प्रणवो धनुः शरो हि आत्मा
ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं
शरवत्तन्मयो भवेत् ॥
—ध्यान बिन्दोपनिषद् ।१४।

धनुष रूप प्रणव बाण रूप आत्मा तथ लक्ष्य रूप ब्रह्म है । उसका वेधन करना ही जप का कार्य है । ॐकार सब मंत्रों का बीज

मंत्र है। क्योंकि ॐकार से ही सब सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। ह्रस्व ॐकार के जप से पाप जल जाते हैं तथा दीर्घ मरस्प्रद है तथा मकार (अर्द्धमात्रा समायुक्त प्रणवो मोक्षदायक) युक्त साढ़े तीन मात्रा युक्त ॐकार मोक्षदायक है। प्रणव का जप वाचिक तथा मानसिक दोनों प्रकारसे होता है। मानसिक जप अधिक अच्छा है। ध्यान बिन्दूपनिषद् में कहा गया है कि तैल धाराके समान तथा घंटे की लम्बी टंकार के समान प्रणव के अग्र भाग को बिना बोले हुए जप करना चाहिये। योग चूड़ामणि उपनिषद् के ७१ वें श्लोक में कहा गया है कि ॐकारका जप पद्मासन लगाकर अपने शरीर तथा ग्रीवा को सीधा रखकर एकान्त में नासिका के अग्रभाग में दृष्टि रोक कर करना चाहिये।

पद्मासनं समारुह्य
समकायशिरोधरः।
नासाग्र दृष्टिरेकान्ते
जपेदोंकारमव्ययम्॥

वैसे प्रत्येक दशा में मंत्र का जप किया जा सकता है पर विधिपूर्वक करने पर उसका पारलौकिक फल शीघ्र मिलेगा। चलते-फिरते, उठते-बैठते, शुद्ध-अशुद्ध सभी स्थानों पर जप करते रहने पर उसके द्वारा मन पाप के संस्कारों से पृथक बना रहता है। इसलिये योग चूड़ामणि उपनिषद् में कहा है:—

शुचिः वापि अशुचिर्वापि
यो जपेत प्रणवं सदा।
न स लिप्यति पापेन
पद्म पत्र मिवाम्भसा॥

योग में सफलता चाहने वाले योगाभ्यासी को नित्य नियमित रूप से स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए।

यदि बैंक में एकाउण्ट होगा तभी आप चैक काटकर दे सकते हैं और दूसरा उसको भुनाकर राशि प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार यदि आप ने तपो शक्ति संचित कर रखी है तभी आपका आशीर्वाद किसी के काम आ सकता है अन्यथा नहीं।

× × × ×

आवरण पड़ते ही इन्द्रियों में अपार शक्ति आ जाती है। इन्द्रियों के निर्बल करने के लिए ही अवधूत लोग विवस्त्र रहना पसन्द करते हैं। जगदात्मा श्रीकृष्ण ने गोपियों का चीर हरण कर उन्हें समझाया था कि जब तक आवरण को दूर नहीं किया जायगा तब तक देहबुद्धि और देहासक्ति से छुटकारा पाना कठिन है।

—अवधूत महाराज

मोक्ष प्राप्ति के साधन

[वैद्य श्री रामधन शर्मा शास्त्री बी. ए., एम-एस.]
मु० पो० मनाणा, जिला करनाल (हरियाणा)

'मोक्ष' सांसारिक बन्धनों से छुटकारा पाना ही मोक्ष होता है क्योंकि विश्व के बन्धनों में फंस कर ही मनुष्य मुक्ति मार्ग से वंचित रह जाता है। जैसे कि कपिलदेव भगवान् ने सांख्य-दर्शन के पहले ही सूत्र में कहा है:—

अथ त्रिविध दुःखात्यन्त निवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थः।

क्योंकि प्रथम शब्द मांगलिक कहा जाता है परन्तु यहां पर प्रारम्भ में ही कपिलदेव जी ने यह कहा है कि तीन प्रकार के दुःखों का अत्यन्त अभाव ही अत्यन्त मोक्ष है।

व्याख्या—यहां 'अथ' शब्द का अर्थ अब माना जाता है। आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधि दैविक इन तीन प्रकार के दुःखों का बिल्कुल न रहना या उत्पन्न न होना ही प्राणीमात्र का मुख्य अभिप्राय है।

आध्यात्मिक दुःख वह है जो आत्मा को अपने शरीर या मन से प्राप्त होता है।

आधिभौतिक दुःख है जैसे चोर, व्याघ्र, सर्प आदि के काटने से चोट लगने से, चोरी होने से जो दुःख प्राप्त होवे वह आधिभौतिक दुःख है।

आधिदैविक दुःख है, जैसे अति वृष्टि से हानि, बिजली गिरना, आग लगना, बाढ़ आदि से हानि होती है। इसी प्रकार से पुरुषार्थ भी चार प्रकार का है, जैसे कि शास्त्र में लिखा है:—

धर्मार्थ काम मोक्षानां यस्यै कोऽपि न विद्यते।
अजा गलस्तनस्यैव तस्य जन्म निरर्थकम्॥

अर्थात्–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों में से एक भी साथ नहीं है तो उस मनुष्य का जन्म बकरी के गले में स्तन की तरह निरर्थक होता है। और चारों में भी 'मोक्ष' सर्वोत्तम पुरुषार्थ है। अब प्रश्न उठता है कि मोक्ष से ही दुःखों की निवृत्ति क्यों होती है। धर्म, अर्थ, काम से क्यों नहीं होती तो इसका समाधान इस प्रकार

से है कि संसारी साधनोंसे यदि हम छुटकारा पाते हैं तो दूसरे दुःख हमें घेर लेते हैं। जब तक एक दुःख हटता नहीं तब तक दूसरा प्राप्त हो जाता है। इसलिए दुःख का अस्तित्व न रहना तो परम पुरुषार्थ मोक्ष के द्वारा ही सम्भव है। फिर आगे चलकर कपिल-देव भगवान् दूसरे सूत्र में कहते हैं :—

दृष्टात्तत्सिद्धि निवृ्त्तेऽप्यनुवृत्ति दर्शनात्।

अर्थात् दृश्य पदार्थों से उसकी सिद्धि नहीं है। एक दुःख को मिटाने पर भी दुःख की पुनः प्राप्ति देखे जाने से यही सिद्ध होता है कि जैसे—एक औषधि के सेवन करने से रोग समूल नष्ट नहीं होता या होता है तो फिर उसकी पुनरावृत्ति हो जाती है। औषधि के अतिरिक्त अन्य पदार्थ भी अनित्य हैं। वे भी अपने शरीरके रहते हुए मिटते देखे जाते हैं। धन, स्त्री, घर आदि क्षणिक सुख-शान्ति भले ही प्राप्त हो जावे किन्तु दुःख की अत्यन्त निवृत्ति नहीं होती। परन्तु यह सब साधन उल्टे दुःखरूप चिन्ता के विषय बन जाते हैं। क्योंकि इनमें से जिसके मिलने से सुख मिलता है उसके बिछुड़ने से फिर दुःख मिलता है। इससे सिद्ध हुआ कि दृश्य पदार्थ दुःखों का अत्यन्त अभाव करने में समर्थ नहीं है। फिर तीसरे सूत्र में कपिलदेव भगवान् कहते हैं : —

उत्कर्षादपि मोक्षस्य सर्वोत्कर्ष श्रुतेः।

अर्थात् मोक्ष के उत्कर्ष से भी उसका सर्व श्रेष्ठत्व बताती है।

व्याख्या—सांसारिक साधनों और उप-लब्धियों, राज्य, धन, स्त्री भवन आदि-आदि सभी से मोक्ष श्रेष्ठ माना गया है और श्रुति ने भी उसका सर्वश्रेष्ठ होना कहा है। ऋग्वेद (७-५९-१२) में लिखा है—'उर्वा-रुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्' अर्थात् हमें मृत्यु से छुड़ाओ किन्तु अमृत से दूर मत करो। यहाँ 'अमृत' पद से जीव-मुक्त अवस्था कही गई है। वेद में कहीं भी सांसारिक साधनों को श्रेष्ठ नहीं कहा है इससे सिद्ध होता है कि मोक्ष ही दुःख को अत्यन्त निवृत्ति कराने में समर्थ है।

मोक्ष मार्ग के साधन :—

सांसारिक दुःखों से छुटकारा पाकर मोक्ष की स्थिति तक पहुंचने का मुख्य साधन ज्ञान या विवेक है। पर यह ज्ञान क्या साधा-रण कहने और सुनने से मिल सकता है? वरन् उसके लिए उस मार्ग की सब विघ्न-बाधाओं को निश्चित हटाना आवश्यक होता है। मनुष्य का जीवन, आन्तरिक स्थिति और बाह्य स्थिति की अनुकूलता और सामंजस्य पर निर्भर है। अनेक सांसारिक कारणों और परिस्थितियों के बीच में आने से यह अनुकूलता अपूर्ण रहती है, जिससे मनुष्य को असन्तोष रहता है। जब तक असन्तोष बना रहेगा तब तक मुक्ति की आशा भी कैसे हो सकती है? इसके दो ही उपाय हैं। या तो हम सांसारिक दृष्टि से अपनी समस्त कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ हों या अपनी परिस्थिति के अनुसार अपनी इच्छा को सीमित बनायें। इनमें से पहला उपाय तो असम्भव है। प्रथम तो सब प्रकार की

कामनाओं की निरन्तर इच्छानुसार पूर्ति होते जाना ही कठिन है। यदि किसी प्रकार ऐसा भी हो सके तो इस प्रकार सांसारिक साधनों को प्राप्त करने में अन्य प्रकार के असंतोष उत्पन्न होते हैं। सांख्य शास्त्र में इन असंतुष्टियों की संख्या पांच बतलाई है। (१) इनके प्राप्त करने में दुःख (२) रक्षा में दुःख (३) इनके नाश में दुःख (४) भोग में दुःख, क्योंकि भोग करने से कामना बढ़ती है (५) दूसरों की हिंसा का दुःख क्योंकि बिना किसी अन्य प्राणी को हानि किये या उसे दुःख पहुंचाये भोग प्राप्त नहीं होते। इन पांचों प्रकार के दुःखों का ध्यान करके अपनी मनोवृत्ति में परिवर्तन आवश्यक है कि अब सन्त भाव से कर्म करते हुए प्रत्येक स्थिति में सन्तुष्ट रह सके और अन्य कामनाओं की पूर्ति के लिये अनुचित कामों का सहारा न लेना पड़े। इसी प्रकार पांच तरह की तुष्टियां हैं। इन बाहरी असंतुष्टियों के अतिरिक्त चार आन्तरिक या मानसिक कारण भी होते हैं जो आत्मोत्कर्ष के मार्ग में बाधा स्वरूप सिद्ध होते हैं उनका वर्णन इस प्रकार किया गया है। (१) प्राकृति तुष्टि (२) उपादान तुष्टि (३) काल तुष्टि (४) भाग्य तुष्टि।

प्राकृति तुष्टि—कुछ लोगों की मान्यता है कि प्रकृति पुरुष 'जीव' को भोग और मोक्ष दिलाने के लिये स्वयं ही उसे विकास के मार्ग पर चलाती रहती है इसलिये कभी न कभी वह हमको स्वतः कैवल्यकी स्थिति तक पहुंचा ही देगी। ऐसी दशा में हम ध्यान-समाधि द्वारा क्यों प्रयत्न करें। पर यह विचार इस लिये गलत है कि प्रकृति पुरुष के अधीन रह कर कार्य कर रही है। यदि पुरुष स्वयं मोक्ष के साधन की उपेक्षा कर रहा है तो प्रकृति उसके लिये क्या कर सकेगी।

उपादान तुष्टि—कुछ लोग शास्त्रों के इस प्रकार के वचनों पर भरोसा कर बैठते हैं कि संन्यास धारण करने से मुक्ति स्वयं ही प्राप्त हो जायगी, पर इसमें यह विचार करना चाहिये कि संन्यास तो चिह्न है। यदि उसमें धारणा, ध्यान, समाधि द्वारा आत्म-साक्षात्कार का प्रयत्न न किया जावे तो केवल वस्त्रों के रंग लेने से कोई उद्देश्य सिद्ध नहीं होता।

कालतुष्टि— अनेक व्यक्तियों का ऐसा देखा जाता है कि समय आने पर स्वयं ही मुक्ति हो जावेगी। यह भी इसलिये ठीक नहीं क्योंकि काल तो सभी तरह उद्देश्यों की पूर्ति का समान रूप से हेतु है। उसमें जिस प्रकार उन्नति होना सम्भव है वैसे ही अवनति होना भी सम्भव है।

भाग्यतुष्टि— एक भरोसा भाग्य का भी होता है कि जब भाग्य अनुकूल होगा तब मुक्ति का सुयोग मिल जावेगा। पर ज्ञानी लोग जानते हैं कि भाग्य का कारण भी हमारा पुरुषार्थ ही है। आलसियों का साथ भाग्य भी नहीं देता। ये तुष्टियां भी मुक्ति मार्ग में बाधा दे सकती हैं। आत्मोन्नति के लिये निरन्तर पुरुषार्थ करते रहना और प्रगति मार्ग पर चलते रहना ही अनिवार्य है।

सिद्धि— जिन उपायों से साधन-मार्ग में अग्रसर होने में साध्यता मिलती है उनको सिद्धि कहा गया है।

सिद्धियां :— आठ प्रकार की होती है।

ऊहः शब्दोऽध्ययनं दुःख
विघाता स्त्रयः सुहृत्प्राप्तिः।
दानं च सिद्धयोऽष्टौ सिद्धेः
पूर्वोऽङ्कुशास्त्रिविधः॥

१. ऊह शब्द का तात्पर्य— आत्म अन्वेषण से है। (२) शब्द— गुरु द्वारा ज्ञान का प्राप्त होना। आध्यात्मिकता की तरफ अग्रसर होना है।

(३) अध्ययन— हम एक या अधिक गुरुओंसे कुछ विद्या प्राप्त कर लेते हैं परन्तु इस प्रकार पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता इसके लिये निरन्तर अध्ययन करते हुए ज्ञान वृद्धि करते जाना ही निश्चित मार्ग है।

(४) सुहृत्प्राप्ति—अनेक बार अकस्मात् किसी विद्वान या संत से मिलने का अवसर मिल जाता है। जिससे हमें सहज में ही ज्ञान की प्राप्ति होती है।

(५) दान—दान शील पुरुष का सत्संगति का अवसर मिलता है और हृदय भी पवित्र होता जाता है। इसलिये उसको मिलने वालों से ज्ञान की प्राप्ति की अधिक संभावना रहती है। यह पांच मार्ग तत्वज्ञान की प्राप्ति के है जो साधक सावधान होकर इन साधनों को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, उसको कोई न कोई सहायक मार्गदर्शक मिल ही जाता है।

(१) आध्यात्मिक दुःख हान—अर्थात् सब प्रकार के दुःखों का मिट जाना।

(२) आधिभौतिक दुःख हान— समस्त आधिभौतिक दुःखों से बचा रहना।

(३) आधिदैविक दुःख हान— समस्त आधिदैविक दुःखों से छूट जाना।

सांख्य शास्त्र में अध्यात्म मार्ग में प्रगति के जो साधन बतलाये है उनका लक्ष्य बन्धनों से ही छुटकारा पाना है।

जैसे-ज्ञानान्मुक्ति :—

ज्ञान का अर्थ है चेतन— अचेतन या पुरुष और प्रकृति के भेद को स्पष्ट रूप से समझ कर हृदयङ्गम कर लेना। क्योंकि मुक्ति का यही एक मात्र मार्ग है।

आगे फिर कपिलदेव मुनि कहते हैं :—

बन्धो विपर्ययात्।

अर्थात्— ज्ञान से विपरीत जो अज्ञान या अविवेक है उसके होने से बन्धन होता है। जब तक मनुष्य को आत्म ज्ञान नहीं होता तब तक वह सांसारिक सुख और सम्प्रदायों को ही जीव का सार समझ कर उनमें लिप्त रहता है या अपवर्ग की तरफ से उदासीन रहता है।

कपिलदेव भगवान् आगे के सूत्र में कहते है :—

सहि सर्व वित् सर्व कर्ता॥

अर्थात् — ईश्वर सर्व अन्तर्यामी है और सब का कर्ता (अधिष्ठाता) है, विश्व में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो ईश्वरीय सत्ता से शून्य हो। जैसे कहा है :—

ईश्वरासिद्धेः।

अर्थात्— ईश्वर की सिद्धि इन्द्रियों से नहीं होती है। आगे फिर कपिलदेव भगवान कहते हैं :—

मुक्त बद्धयोरन्यतरा,
भावान्न तत्सिद्धिः ॥

अर्थात्– मुक्त और बद्ध इन के नितांत अभाव से ईश्वर की सिद्धि नहीं होती। क्योंकि जैसे कहा है :-

समाधि सिद्धिरीश्वरः प्रणिधानात्।

अर्थात् प्रणिधान से समाधि और समाधिस्थ होने से ही ईश्वर की सिद्धि प्राप्त होती है और ईश्वर की प्राप्ति होने के उपरान्त मोक्ष की प्राप्ति है।

जैसे उपनिषद् में लिखा है :—

यस्तन्तु नाभ इव तन्तुभि प्रधानजैः स्वभावतो देव एकः स्वमावृणोत्। स नो दधाद्ब्रह्माप्ययम् ॥

अर्थात् तन्तुओं द्वारा मकड़ी की भांति जिस एक देव परमात्मा ने अपनी स्वरूप भूत मुख्य शक्ति से उत्पन्न अनन्त कार्यों द्वारा स्वभाव से ही अपने को आच्छादित कर रखा है वह परमेश्वर हम लोगों को अपने परब्रह्म रूप में आश्रय दे।

व्याख्या— जिस प्रकार मकड़ी अपने से प्रकट किये हुए तन्तु जाल से स्वयं आच्छादित हो जाती है। उस में अपने को छिपा लेती है उसी प्रकार जिन एक देव परम पुरुष परमेश्वर ने अपनी स्वरूप भूत मुख्य एवं दिव्य अचिन्त्य शक्ति से उत्पन्न अनन्त कार्यों द्वारा स्वभाव से ही अपने को आच्छादित कर रखा है जिस के कारण संसारी जीव उन्हें देख नहीं पाते। वे सर्व शक्तिमान सर्वाधार परमात्मा हम लोगों को सब के परम आश्रयभूत अपने परब्रह्म स्वरूप में स्थापित करें।

आगे श्वेताश्वतरोपनिषद् में लिखा है:—

एको देव सर्व भूतेषु गूढः
सर्व व्यापी सर्व भूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्व भूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥

अर्थात् वह एक देव ही सब प्राणियों में छिपा हुआ सर्वव्यापी और समस्त प्राणियों का अन्तर्यामी परमात्मा है वही सब के कर्मों का आधिष्ठाता, सम्पूर्ण भूतों का निवासस्थान, सबका साक्षी, चेतन स्वरूप और सब को चेतना करनेवाला सर्वथा गुणातीत भी है।

व्याख्या—वे एक ही परम देव परमेश्वर समस्त प्राणियों के हृदयरूप गुहा में छिपे हुए हैं वे सर्वव्यापी और समस्त प्राणियों के अन्तर्यामी परमात्मा हैं वे ही सबके कर्मों के अधिष्ठाता, उनको कर्मानुसार फल देने वाले और समस्त प्राणियों के निवास स्थान आश्रय हैं तथा वे ही सबके साक्षी शुभाशुभ कर्मों को देखने वाले परम चेतन स्वरूप तथा चेतना स्वरूप प्रदान करनेवाले सर्वथा विशुद्ध अर्थात् निर्लेप और प्रकृति के गुणों से अतीत भी हैं।

आगे फिर लिखा है :—

एको वशी निष्क्रियाणां बहूना-
मेकं बीजं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥

अर्थात् जो अकेला ही बहुत से वास्तव में अक्रिय जीवों का शासक है। एक प्रकृति रूप बीज को अनेक रूपों में परिणित कर देता है। उस हृदय स्थित परमेश्वर को जो धीर पुरुष निरन्तर देखते रहते हैं उन्हींको सदा रहनेवाला परमानन्द प्राप्त होता है दूसरों को नहीं।

व्याख्या-जो विशुद्ध चेतन स्वरूप परमेश्वर के ही अंग होने के कारण वास्तव में निष्क्रिय है, ऐसे अनन्त जीवात्माओं के जो अकेले ही नियन्ता कर्मफल देने वाले हैं। जो एक प्रकृति रूप बीज को बहुत से रचना करके इस विचित्र जगत् के रूप में बनाते हैं, उस हृदय स्थित सर्व शक्तिमान परम सुहृद परमेश्वर को जो धीर-पुरुष निरन्तर देखते रहते हैं। निरन्तर उन ही में तन्मय हुए रहते हैं उन ही को सदा रहने वाला परम आनन्द प्राप्त होता है दूसरों को अर्थात् जो इस प्रकार उनका निरन्तर चिन्तन नहीं करते उनको वह परमानन्द नहीं मिलता। वे उससे वंचित रह जाते हैं।

आगे फिर कहा है :-

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना-
मेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तत् कारण सांख्य योगाधि गम्यम्
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पाशैः॥

अर्थात् जो एक नित्य चेतन (परमात्मा) बहुत से नित्य चेतन आत्माओं के कर्म फल भोगों का विधान करता है उस ज्ञान-योग से और कर्म योग से प्राप्त करने योग्य सब के कारणरूप परम देव परमात्मा को जान कर मनुष्य समस्त बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

व्याख्या—जो नित्य चेतन सर्व शक्तिमान सर्वाधार परमात्मा अकेले ही बहुत से नित्य चेतन जीवात्माओं के कर्म-फल भोगों का विधान करते हैं, जिन्होंने इस विचित्र जगत की रचना करके समस्त जीव समुदाय के लिये उनके कर्मानुसार फल भोग की व्यवस्था कर रखी है, उनको प्राप्त करने के दो साधन हैं। एक ज्ञान योग और दूसरा कर्म योग। भक्ति दोनों में ही अनुस्यूत है इस कारण उसका पृथक वर्णन नहीं किया गया। उन ज्ञान योग और कर्म योग द्वारा प्राप्त किये जाने योग्य सब के कारण रूप परम देव परमेश्वर को जानकर मनुष्य समस्त बन्धनों से सर्वथा मुक्त हो जाता है। जो उन्हें जान लेता है और प्राप्त कर लेता है वह कभी किसी भी कारण से जन्म-मरणके बन्धन में नहीं पड़ता। अतएव मनुष्य को उन सर्व शक्तिमान सर्वाधार परमात्मा को प्राप्त करने के लिये अपनी योग्यता और रुचि के अनुसार ज्ञान योग या कर्म योग किसी एक साधन में तत्परता पूर्वक लग जाना चाहिये।

कुछ प्रश्न और उनके उत्तर

[पूज्यपाद श्री गुरुदेवजी के सौजन्य से]

प्रश्नः— पूज्य गुरुदेव! दीक्षा शब्द का क्या अर्थ है?

उत्तरः— सौम्य! दीक्षा शब्द में 'दीयते' और 'क्षीयते' दो क्रियाओं का प्रयोग होता है। इसका अर्थ यह है कि जिस क्रिया के करने पर शुद्धात्म-प्रकाश अर्थात् ज्ञान दिया जाय और अज्ञानान्धकार का नाश किया जावे, उसी क्रिया को दीक्षा शब्द से कहा गया है। जिस प्रकार कोई मनुष्य दीपक जलाता है और उस दीपक के जलाने पर प्रकाश तो होता ही है। प्रकाश होने के साथ-साथ ही अन्धकार का नाश भी होता है। इसी प्रकार आत्म-शक्तिमान श्री गुरुदेव किसी को दीक्षा प्रदान करते हैं उसके अज्ञानान्धकार का नाश करते हैं और शुद्ध आत्म-तेज का प्रकाश करते हैं। अतः इस क्रिया का नाम दीक्षा है।

प्रश्नः— दीक्षा कितने प्रकार की होती है?

उत्तरः— तंत्र शास्त्रों में दीक्षा के बहुत से भेदों का वर्णन मिलता है। उनमें से योगिराज लोग प्रायः शाम्भवी दीक्षा द्वारा ही लोगों का कल्याण करते हैं, उसका लक्षण इस प्रकार है।

गुरोरालोक मात्रेण स्पर्शात्संभाषणादपि।
सद्यस्संज्ञ भवेज्जन्तोः पाशोपक्षयकारिणी॥
सा दीक्षा शाम्भवी स्मृता॥

अर्थात् श्री गुरुदेव के देखने मात्र से या स्पर्श करने से या वाणी के उच्चारण करने मात्र से जीव को तत्काल बोध हो जाय वह पाशोपक्षयकारिणी शाम्भवी दीक्षा कही गई है।

अर्थात् स्पर्श दीक्षा, दम दीक्षा, एवं वाग्दीक्षा करके शाम्भवी दीक्षा के अलग-अलग भेद हैं। उनको इस प्रकार समझ लेना चाहिए।

दृग-दीक्षाः—

गुरोरालोक मात्रेण सर्वस्संज्ञा भवेज्जन्तोः
सा दीक्षा दृग दीक्षा इति,

अर्थात् गुरुदेव के देखने मात्र से शिष्य के हृदय में तत्काल ज्ञान का उदय हो जाय। इस क्रिया का नाम दृग-दीक्षा कहा गया है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में नेत्रों की शक्ति का बहुत बड़ा वर्णन मिलता है। आज भी भारतवर्ष में यह रिवाज है कि जब कोई गृहस्थी किसी महात्मा को अपने घर ले जाना चाहता है तो वह उनसे प्रार्थना किया करता है कि महाराज आपके पदार्पण करने से मेरा घर पवित्र हो जायेगा। आपके दृष्टिपात से मेरे घर के सब संकट मिट जायेंगे। आपकी नजर दौलत है। इत्यादि शब्द उस महात्मा की आँखों की शक्ति की ओर संकेत करते हैं। उनकी नेत्रों की ताकत उतनी होनी चाहिये। इस प्रकार नेत्रों की बढ़ी हुई शक्ति के द्वारा जो गुरुदेव अपने शिष्यों में शक्ति-संचरित करते हैं उसका नाम दृग दीक्षा है।

स्पर्श-दीक्षाः—

हमारे देश का रीति-रिवाज है छोटे बच्चे अपने बड़ों को चरण-स्पर्श करके नमस्कार करते हैं और बड़े बूढ़े अपना कर-स्पर्श करके उनको आशीर्वाद दिया करते हैं। यह प्रथा केवल भारतवर्ष में है अन्य किसी देश में यह प्रथा नहीं है। क्योंकि विदेशी लोग हमारे पूर्वजों की चलाई इस प्रथा के महत्व को समझते नहीं। श्री मनुजी महाराज ने अपनी मनुस्मृति में लिखा है :—

नित्याभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपि सेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्॥

अर्थात् जो लोग अपने बड़े-बूढ़ों को नमस्कार करते हैं और उनकी सेवा करते हैं उनकी आयु, विद्या, यश, और बल शरीर में बढ़ते रहते हैं। जो संत अपनी मानस शक्ति को बढ़ा लेते हैं उनके स्पर्श के द्वारा उनके शिष्यों के हृदयों में शक्ति का संचार होता रहता है। इसी का नाम स्पर्श-दीक्षा है। उज्जैन के भर्तृहरि आश्रम में लगभग तीस वर्ष पहले डाक्टर दुर्गाशंकर नाम के एक ब्राह्मण कर-स्पर्श के द्वारा अनेकों प्रकार के रोगियों के रोगों का उपचार किया करते थे और उसके फलस्वरूप अनेक रोगियों ने बिना किसी दवाई के लाभ प्राप्त किया। यह डाक्टर साहब की बढ़ी हुई विशेष शक्ति का प्रभाव था। अतः जो योगी अपने कर-

स्पर्श के द्वारा अपने शिष्यों के हृदय में शक्ति संचारित करे उसका नाम ही स्पर्श दीक्षा है।

वाग्दीक्षा :—

योगी के मानस क्षेत्र में विकसित हुई मानस-शक्ति मनुष्य समाज पर अपना प्रभाव दिखलाने के लिए, नेत्रों के द्वारा, स्पर्श के द्वारा या वाणी के द्वारा प्रस्फुटित हुआ करती है। जिस व्यक्ति ने अपने मानस क्षेत्र को जगाकर उसमें भली प्रकार शक्ति का संचय किया है, वह यदि वाणी से कुछ उच्चारण करता है तो उसकी वाणी का प्रभाव तत्काल प्राणीमात्र पर हो जाया करता है। जिस योगी के मानस क्षेत्र में इस प्रकार की शक्ति बढ़ी हुई है यदि वह अपनी वाणी द्वारा कोई मन्त्र प्रदान करके अपने शिष्यों पर शक्तिपात करता है उसी का नाम वाग्दीक्षा कहलाता है। यह तीन प्रकार की दीक्षायें शाम्भवी दीक्षायें कहलाती हैं। इसके अतिरिक्त संकल्प-दीक्षा, मानस-दीक्षा आदि और भी अनेक भेद हैं। किन्तु शक्तिपात दीक्षायें भगवान शिव से उपदिष्ट इस शाम्भवी दीक्षा को ही प्रधानता दी गई है और इसी के द्वारा अधिक जनहित होता है।

प्रश्न:—दीक्षा क्यों ली जाती है परिणाम में उसका क्या फल मिलता है? स्पर्श दीक्षा, दृग-दीक्षा, मानस-दीक्षा आदि तो स्वभाव से ही हर महापुरुष की ओर से होती ही रहती है फिर हम किसी विशेष विधि के साथ किसी को धूप दीप, नैवेद्यादि अर्पण करके षोडशोपचार पूजा पद्धति करके विशेष रूप से गुरु दीक्षा क्यों प्राप्त करें क्यों गुरु बनावें। इससे क्या विशेष लाभ होगा? जब कि महापुरुषों के सामने जाने से ही हमारे सब काम अनायास हो जाते हैं।

उत्तर:—लाभ होगा। और वह लाभ यह होगा कि उनके साथ 'मैं' 'मेरा' का सम्बन्ध जुड़ जायेगा। एक विद्यार्थी किसी विद्यालय में जाकर विद्यालय के नियमानुसार अपने आपको विद्यालय में प्रवेश करा लेता है तो वह उस विद्यालय का विद्यार्थी समझा जाता है। उसकी देख-रेख और संरक्षण का उत्तरदायित्व वहाँ के अधिकारी लोगों पर पूर्णरूपेण आ जाता है। वहाँ के अधिकारी यह समझते हैं कि यह हमारा छात्र है। इसको योग्य बनाना हमारा कर्तव्य है। इसी प्रकार अध्यात्म मार्ग में भी इस विद्या के केन्द्रीभूत आचार्य से जो अपना सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। वह उनके आत्मीय बन जाते हैं और उन्हें आचार्य के नियमानुसार उनके नियमों में बद्ध होकर चलना पड़ता है। क्योंकि वह समझते हैं कि यह हमारे गुरुदेव हैं। हमें इनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। एक स्थान

पर एक शक्तिशाली महापुरुष आए हुए थे । उनके चरणों में सत्संगार्थ बहुत से स्त्री पुरुष आया जाया करते थे । उन सबके साथ में एक वैद्यराज भी आये थे वह बहुत शिव भक्त थे । योगिराज जी ने वैद्य के सद्व्यवहार को देखकर उनपर शक्तिपात किया । जिसके फलस्वरूप वह संप्रज्ञात योग के विद्यार्थी बन गये । उनको अपने ध्यान में बड़े-बड़े दिव्यानन्द प्रारम्भ हो गये । वैद्य जी ने अपनी दिव्यानुभूतियों को कहना प्रारम्भ कर दिया । मान-सम्मान के झमेले में पड़ गये । जब योगिराज जी ने देखा कि ये पतन की ओर जा रहे हैं तो उन वैद्यजी पर नियन्त्रण करना चाहा । किन्तु वैद्य जी ने उनके नियन्त्रण को स्वीकार नहीं किया । और स्पष्ट शब्दों में उत्तर दे दिया कि आपने मेरी सहायता अवश्य की है, किन्तु आपसे मैंने कोई गुरु-दीक्षा तो ली नहीं । अतः मैं आपके नियन्त्रण को क्यों मानूँ । मैं अपनी हर क्रिया में स्वतन्त्र हूँ चाहे जो कुछ करूँ आपको रोकने का मुझे कोई अधिकार नहीं । अंत में वैद्य जी नियन्त्रण से बाहर होकर स्वेच्छा से चलने लगे । अंत में परिणाम स्वरूप उनका पतन हो गया और वह जैसे के तैसे रह गये । कदाचित् उन्होंने योगिराज जी से विधि-विधान से दीक्षा प्राप्त की होती तो गुरु-शिष्य के नाते से उनकी आज्ञाओं का पूर्णरूपेण पालन करने का प्रयत्न करते और इस घोर पतन से बच जाते । जितना उनका विकास हो गया था वह और बढ़ता चला जाता अतः दुनियावी अन्य सम्बन्धों की भांति गुरुदेव के चरणों से एक दीक्षा सम्बन्ध भी अनिवार्य है । और सभी के लिए सब प्रकार से श्रेयस्कर है ।

प्रश्नः— क्या स्त्रियों को भी दीक्षा प्राप्त करनी चाहिए ?

उत्तरः— अवश्य दीक्षा प्राप्त करनी चाहिए । क्योंकि हर एक पुण्यकर्म में एवं अपने आत्मोत्थान में पुरुषों के समान ही स्त्रियों का भी समान अधिकार है । श्रद्धा विचार और चिन्तन करने वाला जो मन पुरुषों में है वह स्त्रियों में भी है । जिस प्रकार पुरुष आसन, बन्ध, मुद्रायें, प्राणायाम आदि कर सकते हैं उसी प्रकार यह सभी क्रियायें स्त्रियां भी कर सकती हैं । हमारे प्राचीन इतिहासमें सुलभा, गार्गी, मैत्रेयी, मदालसा आदि के बड़े-बड़े उपाख्यान हैं जिनसे उनकी ब्रह्मवादिता एवं योग परायणता पूर्णरूपेण स्पष्ट है । अतः जिस प्रकार से योगाभ्यास में योग-दीक्षा प्राप्त करके अभ्यास करने का पुरुषों का अधिकार है इसी प्रकार का अपने लिए स्त्रियों को भी पूर्णरूपेण अधिकार प्राप्त है ।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःख भाग् भवेत् ॥

प्रश्नः— क्या स्त्रियों को योग-दीक्षा का अधिकार है और क्या उनको गुरुदेव से मंत्रोपदेश लेना चाहिये ?

उत्तरः— स्त्रियां भी पुरुषों की भांति ही गुरुदेव से दीक्षा लेने की अधिकारिणी है। 'दीक्षा' शब्दमें 'दीयते' और 'क्षीयते' दो क्रियाओंका प्रयोग होता है। 'दीयते ज्ञानम् क्षीयते च नवावर्णनम।' अर्थात् गुरुदेव की जिस क्रिया से शिष्य के हृदय में ज्ञान का संचार हो जाय उसी क्रिया को दीक्षा कहते हैं। आत्मत्वेन स्त्री और पुरुष पशु और पक्षी कीरी और कुंजर ये सभी एक हैं जिस प्रकार पुरुष के अन्दर भी मनन करने की शक्ति है उसी प्रकार स्त्रियों के अन्दर भी मनन करने की शक्ति है। आत्मोत्थान स्त्रियों का भी होना चाहिये पुरुषों का भी होना चाहिये।

इसलिये गुरुदेव से शक्तिपात दीक्षा पा करके अपना आत्म-विकास करने में स्त्रियों का भी सामान्य अधिकार है।

प्रश्नः— गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामायण में 'उत्तम के अस बस मन माहीं, सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं।

यह चौपाई कहकर उत्तम पतिव्रता के लिये संसार में कोई और पुरुष है ही नहीं पतिव्रता की ऐसी सुन्दर निष्ठा का वर्णन किया है और मध्यम दर्जे की स्त्रियों के लिये कहा है–मध्यम पर पति देखे कैसे, भ्राता अनु पिता निज जैसे। यानी मध्यम पतिव्रता स्त्री संसार में अन्य पुरुषों को अपने भाई, बाप तथा बेटे के समान देखती है। इस प्रकार से उत्तम दर्जे की पतिव्रता स्त्रियाँ जिनकी दृष्टि में अपने पति के अतिरिक्त दूसरा और कोई पुरुष ही नहीं है—क्या वह जब गुरुदेव से दीक्षा प्राप्त करेंगी तो क्या उनके पतिव्रत में बाधा नहीं पैदा होगी ?

उत्तरः—बिल्कुल नहीं होगी। यदि उस पति-परायणा देवी की अपने पति में परम अनुरक्ति हो तो उसके मन में व्यभिचार वृत्ति बनेगी ही नहीं। वह गुरुदेव से शिक्षा प्राप्त करेगी और अपनी साधना करेगी और दूसरी बात यह है कि इस प्रकार की ऊंचे धर्मवाली पतिव्रता तो योगनिष्ठ साधिका ही हो सकती है। जिसकी वृत्ति योग-ध्यान करती हुई इतनी ऊंची हो गई है कि उसके हृदय में अपने इष्ट के अतिरिक्त कोई और आता ही नहीं है। वह तन्मय होकर ही सारे जगत् को देखती है तो ऐसी साधिका की दृष्टि जहां-जहां भी जावेगी वहां-वहां उसको कोई और आकृति दृष्टि में ही नहीं आवेगी। वह तो समाधिमें वृत्ति सीधे जानेपर भी तदाकाराकारित होने के कारण सर्वत्र उस ही को देखेगी और उसकी वृत्ति परा-स्थिति को प्राप्त हो जावेगी। उसी पर यह चौपाई लागू हो सकेगी :—

उत्तम के अस बस मन माहीं ।
सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं ॥

जिस प्रकार से विद्यालय में अध्ययन करनेवाले छात्रों का लक्ष्य अपने अध्यापक से शिक्षा प्राप्त करना रहता है और शिक्षा ही उनको प्राप्त करनी चाहिए । इसी प्रकार से स्त्रियों का गुरुदेव से आत्म-विकास के लिए शिक्षा प्राप्त करने का लक्ष्य होता है और वही होना चाहिए, न कि व्यभिचार आदि कुकृत्यों में पड़ना । इसलिए गुरुदेव से शिक्षा-प्राप्त करने में उसके पातिव्रत में कोई अन्तराय बिल्कुल नहीं पड़ता ।

गंभीर अध्ययन

अध्ययन में लंबाई-चौड़ाई महत्व की चीज नहीं है, महत्त्व है गंभीरता का । बहुत देरतक घंटों के घंटे और भांति-भांति के विषयों का अध्ययन करते रहने को मैं लंबा-चौड़ा अध्ययन कहता हूं । समाधिस्थ होकर नित्य-निरंतर थोड़ी देर किसी निश्चित विषय के अध्ययन को मैं गंभीर अध्ययन कहता हूं । १०-१२ घंटे सोना पर करवटें बदलते रहना या सपने देखते रहना—ऐसी नींद से विश्रांति नहीं मिलती । बल्कि ५ ही ६ घंटे सोवें किंतु निद्रा गाढ़ी हो तो इतनी नींदसे पूर्ण विश्रांति मिल सकती है । यही बात अध्ययन की है । समाधि अध्ययन का मुख्य तत्व है ।

समाधि-युक्त गंभीर अध्ययन के बिना ज्ञान नहीं । लंबा-चौड़ा अध्ययन बहुत कुछ फालतू ही होता है । उसमें शक्ति का अपव्यय होता है । अनेक विषयों पर गाड़ी भर पढ़ाई पढ़ते रहने से कुछ हाथ नहीं लगता । अध्ययन से प्रज्ञा, बुद्धि स्वतन्त्र और प्रतिभावान होनी चाहिए । प्रतिभा के माने हैं बुद्धि में नए-नए कोपलें फूटते रहना । नई कल्पना, नया उत्साह, नई खोज, नई स्फूर्ति ये सब प्रतिभा के लक्षण हैं । लंबी-चौड़ी पढ़ाई के नीचे यह प्रतिभा दबकर मर जाती है ।

—आचार्य विनोबा

करिष्ये वचनं तव

[श्री पण्डित मनोहरलाल शर्मा एम० ए०, गुरुभक्तरत्न]

[महात्मा तत्त्ववेदी तथा विचक्षण नामक विद्वान् का संवाद]

[श्री मद्भगवद्गीता में कृष्णार्जुन संवाद के अन्तिम श्लोक का अन्तिम चरण 'करिष्ये वचनं तव' १८।७३। है। इसके अर्थान्वेषण के लिये प्रस्तुत लेख है—लेखक]

विचक्षण :— महात्मन् ! नमस्ते !

महात्मा :— तत्त्ववेदी ! कल्याण हो। कैसे आगमन हुआ ?

विचक्षण :—मैं भगवद्गीता का विद्यार्थी हूं। 'करिष्ये वचनं तव' का अर्थ आप से समझने आया हूं।

तत्व० :— हे विद्वान् ! तुम्हारा बहुत उत्तम प्रश्न है। तुमने गीता के संबंध में क्या-क्या पढ़ा है ?

वि० :— भगवान शंकर का गीता भाष्य, आनन्दगिरि की शांकर भाष्य पर टीका, नीलकंठी टीका, मधुसूदनी टीका, श्रीधरी टीका, भाष्योत्कर्ष प्रदीपिका, महामाहेश्वर अभिनव गुप्त की टीका, रामानुजाचार्य की टीका इत्यादि।

तत्व० :— प्रिय ! तुम तो पूर्ण विद्वान् हो। इन टीकाओं से अधिक कौन क्या बता सकता है ? तुम्हारे पास पूर्ण सामग्री है, केवल मनन की आवश्यकता है। तुम्हारी समझ में क्या अर्थ आया है, सो बताओ।

वि० :— 'मैं तुम्हारा वचन करूंगा, आज्ञा पालन करूंगा, अर्थात् युद्ध करूंगा।' मैं तो ऐसा समझा हूं।

तत्व० :— श्री भगवानने अर्जुन को युद्ध के लिये कब आज्ञा दी थी ?

वि० :— महाराज ! श्री भगवान ने कई बार अर्जुन को युद्ध करने की आज्ञा दी है, यथा :—

१. तस्माद् युध्यस्व भारत। २। १८।

२. अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥२।३३।

३. तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ।२।३७।

४. ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥२।३८।

५. निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वर ।३।३०।
६. तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ॥८।७॥

सत्य :— तुमने बहुत सुन्दर प्रमाण दिये है। परन्तु अब विचार करो कि अर्जुन युद्ध क्षेत्र में क्यों आया था ? युद्ध करने के लिये अथवा अन्य किसी प्रयोजन से ? श्री भगवान तो अनुमन्ता मात्र थे। वे तो पाण्डवों की ओर से दुर्योधन के पास शान्ति दूत भी बन कर गये थे। श्री भगवान का कौरवों के साथ कोई झगड़ा न था। श्री भगवान ने युद्ध क्षेत्र में शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा की थी। उन्होंने अर्जुन के सारथी का काम किया। श्री भगवान का क्या प्रयोजन था कि वे अर्जुन को युद्ध की आज्ञा देते ? वैसे भी क्या कोई किसी के कहने से विनाशकारी युद्ध में प्रविष्ट होता है ?

यदि तुम यह कहो कि आज्ञा विषय में भगवान के प्रत्यक्ष वचन मिलते हैं, तो उनका तात्पर्य समझना चाहिये। जैसे कोई पुरुष भोजन के लिये थाली पर बैठ तथा खाने के लिये ग्रास तोड़ले, परन्तु उस काल में उसको शंका हो जावे कि भोजन में विष है तो वह भोजन नहीं करता। इतने में उसकी माता आकर कहे, पुत्र ! मैंने स्वयं भोजन बनाया है। इसमें विष नहीं है, तू भोजन कर, तब वह पुरुष भोजन करने लगता है। इस दृष्टान्त में माता का प्रयोजन भोजन की आज्ञा देने में नहीं है, अपितु पुत्र की शंका निवारण करने में है जिसके कारण उसके पुत्र ने भोजन के निमित्त बैठने पर भोजन नहीं किया। इसी प्रकार अर्जुन स्वयं युद्ध करने के लिये आया, पुनः शोकमोह से व्याकुल होकर युद्ध करने का विचार छोड़ दिया।

न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूवह ॥२।९॥

मैं युद्ध नहीं करूंगा इस प्रकार गोविन्द को कह कर अर्जुन चुप हो गया। श्री भगवान ने गीता-उपदेश से अर्जुन का शोकमोह निवारण किया है, जिसके कारण अर्जुन युद्ध के निमित्त प्रस्तुत होकर भी, युद्ध से विरक्त हो गया था। श्री भगवान के वचनों का तात्पर्य अर्जुन का मोह निवारण करने

में है। युद्ध की आज्ञा देने में नहीं है।

जब तक अर्जुन का मोह दूर न हुआ, तभी तक श्री भगवान के वचन युद्ध करने के पक्ष में है। परन्तु ग्यारहवें अध्याय में जब अर्जुन ने यह कहा कि 'मोहो यं विगतो मम।' (११।२१) मेरा मोह दूर हो गया है उसके पश्चात् श्री भगवान ने अर्जुन को युद्ध करने के लिये नहीं कहा।

वि० :— महाराज ! अर्जुन के बोध होने पर भी श्री भगवान ने अर्जुन को युद्ध करने की आज्ञा दी यथा :—

मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा,
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥ ११ । ३४ ।

हे अर्जुन ! द्रोणभीष्मादि मेरे से मारे हुए है उनको तू निमित्तमात्र होकर मार। उनसे भय मत कर, युद्ध कर, तू संग्राम में दुर्योधनादि शत्रुओं को जीतेगा।

तत्व० :— हे विद्वन् ! तुम विचार कुशल हो। तुम्हारी शंका प्रशस्त है। इसका निवारण सुनो। अर्जुन ने युद्ध न करने के कारणों में, दूसरे अध्याय में श्री भगवान से कहा था— 'यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः' ।२।६ यह भी नहीं पता कि इस युद्ध में हम जीतेंगे या वे (कौरव) हमको जीतेंगे। श्री भगवान के हृदय में अर्जुन का भय खटकता था। श्री भगवान भक्तवत्सल हैं, अतः अर्जुन का भय-निवारण करना आवश्यक था। वैसे तो विराट्रूप दर्शन में भीष्मादि को मरता हुआ दिखा दिया था, तो भी स्वमुखा-रविन्द से अर्जुन को आश्वासन देने के लिए कह भी दिया कि तू डर मत। मैंने सबको पहले ही मार रक्खा है तू मारने में केवल निमित्तमात्र हो। युद्ध कर, विजयी होगा। श्री भगवान का प्रयोजन अर्जुन का, द्रोण, भीष्मादियों से भय दूर करना मात्र है। इसके अतिरिक्त गीता उपदेश के अन्त में श्री भगवान कहते हैं :—

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥१८।६३।

हे अर्जुन ! मैंने तुझे गोपनीय से भी अधिक गोपनीय गीताशास्त्र सुनाया है। इस पर अच्छी तरह विचार करके जैसी तेरी इच्छा है वैसा कर।

इस अन्तिम वाक्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री भगवान ने अर्जुन पर कोई आज्ञा नहीं लादी। अर्जुन को निर्णय के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी थी। अतः अर्जुन को श्री भगवान ने युद्ध के लिए आज्ञा नहीं दी कि तू युद्ध कर।

वि० :— महाराज ! 'तेरा वचन करूंगा' इस वाक्य का अर्थ अर्जुन ने जो कुछ गीता-श्रवण के उपरान्त किया, उससे सिद्ध होता है। अर्जुन ने युद्ध ही किया, अतः तेरा वचन करूंगा का अर्थ युद्ध करूंगा ही युक्ति संगत बैठता है।

तत्त्व० :—तुम धन्य हो, रचनात्मक सुन्दर शंकायें उठाते हो। शंका उठाये बिना शिष्य के ज्ञानस्तर का पता चलता नहीं। शंकायें विचारजन्य होती हैं। विचार-रहित पुरुष को ब्रह्मा, विष्णु, महेश तुल्य गुरु भी बोध नहीं करा सकते। सद्गुरु शुभ शंकाओं से प्रसन्न होते हैं। शंका निवारण के पश्चात् ज्ञान-स्थिति दृढ़ हो जाती है। अब इस पर विचार करो कि श्री भगवान के कौन से वचन के आधार पर अर्जुन ने युद्ध किया। श्री गीता में सात-सौ श्लोक हैं, अर्जुन के प्रश्नों तथा धृतराष्ट्र और संजय के कतिपय श्लोकों को छोड़कर, बाकी सभी वचन तो श्री भगवान के श्रीमुख से निकले हैं, अतः इस बात का अन्वेषण करो कि वह कौन-सा वचन है ?

वि० :— महाराज ! ज्ञानवान् से कर्म नहीं बनता, क्योंकि ज्ञानाग्नि से सब कर्म दग्ध हो जाते हैं। फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि अर्जुनने युद्ध किया। अर्जुन ज्ञानवान् था। यह कैसे हुआ ?

तत्त्व :— हे वत्स ! श्रवण कर। श्री भगवान ने कितने ही युद्ध करके अधर्मियों को मारा ! श्री भगवान ज्ञान मूर्ति, जगद्गुरु तथा 'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्' ब्रह्म की साक्षात मूर्ति थे। तो भी उन्होंने युद्ध किया।

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥४।१९।

जिसके सब कर्म वासना और संकल्प से रहित होते हैं उस ज्ञानाग्नि से जले हुए कर्म करने वाले को बोधवान पुरुष पण्डित कहते हैं अर्जुन ने जो युद्ध किया, वह वासना और अहंकार के वशीभूत होकर नहीं किया। उसने लोक संग्रह के लिए युद्ध किया। अर्जुन ने इस प्रकार विचार किया कि यदि मैं युद्ध नहीं करूंगा, तो क्षात्र धर्म की मर्यादा उठ जायेगी। जैसा मैं करूंगा, वैसे ही अन्य लोग भी, मुझे श्रेष्ठ मान कर आचरण करेंगे। इससे वर्णाश्रम धर्म नष्ट होगा तथा लोकों का नाश होगा। अर्जुन युद्ध करके भी अपनी ज्ञानपावित दृष्टि में युद्ध कर्म से असंस्पृष्ट ही रहा।

जि०:— (हर्षातिरेक से) हे मुनिवर! मेरी दृष्टि में भी भगवान का वह वचन जिसके आधार पर अर्जुन ने युद्ध किया, आ गया है। आप श्रवण करके निर्णय करें कि क्या मैं ठीक समझा हूं। वह वचन इस प्रकार है:—

न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥ ३। २२॥

हे पार्थ! अब तीनों लोकों में मेरा कोई कर्त्तव्य शेष नहीं है, क्योंकि कोई ऐसा अप्राप्त फल नहीं है जो मुझे पाना हो, तो भी मैं कर्म में तत्पर रहता ही हूं॥ २२॥

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ ३। २३॥

हे अर्जुन! यदि कदाचित आलस्य को त्याग कर मैं कर्म में तत्पर न रहूं तो मनुष्य सब प्रकार मेरे ही मार्ग का अनुसरण करने लगेंगे।

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः॥ ३।२४॥

यदि मैं कर्म न करूं तो ये लोक विनष्ट हो जायें। इस प्रकार मैं वर्णसंकरता का कर्ता होऊं और इस सारी प्रजा का नाश करूं।

तत्व :— हे विमलमते ! तुमने श्री भगवान के यथार्थ वचनों को पकड़ा है। यद्यपि अर्जुन के लिये युद्ध कर्म कर्तव्य नहीं था, तब भी लोक-संग्रह के लिये उसने युद्ध किया। श्री भगवान के इन्हीं वचनों का अर्जुन ने पालन किया। युद्ध करने पर भी अर्जुन युद्ध के कर्म से लिपायमान नहीं हुआ। उसने कर्म में अकर्म के दर्शन किये।

चि० :— हे स्वामिन् ! मेरे हृदय में एक शंका शूल की भांति चुभती है। उसका समाधान आप से चाहता हूं। उपनिषदों में लिखा है कि ज्ञानवान के प्राण परलोक गमन नहीं करते। यहीं विलीन होते है। याज्ञवल्क्य ने कहा है:—

अत्रैव समवनीयन्ते न तस्य
प्राणा उत्क्रामन्ति। बृहदा० ३। ३। २२।

अर्जुन बोधवान था तो उसको नरक के दर्शन कैसे हुए ? दूसरी बात यह है कि अर्जुन ने श्री भगवान से गीता ज्ञान फिर सुनाने के लिये प्रार्थना की थी क्योंकि वह गीता-ज्ञान भूल गया था। यह बात अनुगीता से सिद्ध होती है।

यद् तद् भगवता प्रोक्तं, पुरा केशव सौहृदात्।
तत्सर्वं पुरुषव्याघ्र, नष्टं मे भ्रष्टचेतसः॥

हे केशव ! आपने सौहार्दवश पहले गीताज्ञानोपदेश दिया था। श्रेष्ठ पुरुष ! वह सब ज्ञान युद्ध में विचलित होने के कारण नष्ट हो गया है। इसके उत्तर में श्री भगवान ने अनुगीता सुनाई।

तत्व :—हे विचक्षण ! अर्जुन के ज्ञान होने में तुम्हें सन्देह नहीं करना चाहिए। ऐसी शंका हितकर नहीं होती। इससे गीता के ज्ञानोत्पादक सामर्थ्य पर कलंक लगता है और सर्वज्ञ भगवान श्रीकृष्ण के वचनों पर मिथ्यात्व का दोष आरोपित

होता है। साधुओं की ऐसी शंका उचित नहीं होती। ज्ञान, भूख प्यास की भाँति स्वसंवेद्य विषय है। दूसरे तो उसका चिह्न देखकर अनुमान मात्र कर सकते हैं। अर्जुन दो बार स्वयं कहता है कि मेरा मोह नष्ट हो गया। 'मोहो य विगतो मम' ११।१ 'नष्टो मोहः' १८।७३। गीता श्रवण के साथ-साथ ही अर्जुन का मनन और निदिध्यासन चलता था। ग्यारहवें अध्याय, विश्वरूप दर्शन में श्री भगवान ने अर्जुन को दिव्य-दृष्टि प्रदान कर एकाग्रता द्वारा उसकी ज्ञान स्थिति स्थिर की, पुनः उसको समस्त विश्व अपने देह में दर्शा कर आत्मा की अखण्डैकरसता का साक्षात्कार कराया। 'वासुदेवः सर्व-मिति' ७।१९ का प्रत्यक्ष प्रमाण दिया। पन्द्रहवें अध्याय के उपदेश के उपरान्त अर्जुन कृतार्थ हो चुका था।

यह ठीक है कि अर्जुन को ज्ञान कराने में श्री भगवान की कृपा ही मुख्य थी, क्योंकि समरभूमि में दोनों युद्धोद्यत सेनाओं के बीच में खड़ा होकर, जब कि प्रतिपल प्राण संशय में पड़े रहते हैं, ब्रह्मज्ञान से गहन विषय को एकाग्रचित्त से अवगत करना संभव नहीं। तो भी स्थिति जैसी गम्भीर और विषम थी, वैसे ही वासुदेव भी साक्षात् ब्रह्म की मूर्ति थे और वही सर्व नियन्ता प्रबलतम रक्षक थे। अतः बीरवर अर्जुन पूर्ण ज्ञानी थे। इसमें सन्देह की रंचमात्र भी गंध नहीं है।

अब जनक वशिष्ठ और अनुगीता की बात श्रवण करो। उत्तम ज्ञानी दो प्रकार के होते हैं, यद्यपि उनमें ज्ञान की समानता होता है। जिनके आवरण और विक्षेप दोनों ही ब्रह्मज्ञान से भंग हो जाते हैं, वे तो दीर्घ समाधि में ही बैठे रहते हैं, उनके प्रारब्ध कर्म प्रायः क्षीण रहते हैं, वे विशेष कर्म में प्रविष्ट नहीं होते। ऐसे महात्मा केवल अपनी स्थिति मात्र से जगत का कल्याण करते हैं।

दूसरे उत्तम ज्ञानी वे होते हैं जिनका आवरण तो भंग हो जाता है, परन्तु विक्षेप भंग नहीं होता। अतः आवरण नष्ट होने के कारण, उनकी बुद्धि अत्यन्त विमल रहती है। उस

पर कर्म लेप नहीं चढ़ता। वे निर्भय होकर कर्म करते हैं और जीवन्मुक्ति का आनन्द लेते हैं। इनके कर्म इतोचित कहे जाते हैं। यहाँ कर्म बना वहीं तत्क्षण ज्ञानाग्नि से दग्ध हो जाता है। इस श्रेणी के ज्ञानी लोक संग्रह के लिये कर्म करते हैं। इनको कारक पुरुष अथवा अधिकारी पुरुष भी कहते हैं। ये सब ज्ञानवान होते हैं। इनको सृष्टि में हस्तक्षेप करने का अधिकार होता है। कारक पुरुषों की भी प्रवृत्ति होती है। राम, कृष्ण आदिगुरु शंकराचार्य कारक पुरुष हैं। नर-नारायण के अवतार अर्जुन और कृष्ण अधिकारी पुरुष हैं। महाभारत शान्ति पर्व में स्वयं कृष्णजी का कहना है :—

त्वं चैवाहं च कौन्तेय नरनारायणौ स्मृतौ।
भारावतारणार्थं तु प्रविष्टौ मानुषीं तनुम्॥

कुन्तीनन्दन! तुम और मैं दोनों नरनारायण नाम से प्रसिद्ध हैं। भूमि का भार उतारने के लिये हमने मानव शरीर में प्रवेश किया है। जब भी कभी द्वापर और कलि की संधि होगी, तभी-तभी महाभारत का तुमुल युद्ध होगा, तभी-तभी गीता की ज्ञानज्योति जगेगी, तभी-तभी नर-नारायण (अर्जुन-कृष्ण) अवतरित होंगे और भूभार उतार कर पुनः अपने मौलिक स्वरूप में प्रवेश कर जायेंगे। वे सदा मुक्त रहते हुए भी यथाधिकार लीला करते रहते हैं। अर्जुन के लिए जैसा महाभारत का युद्ध लीलामात्र रहा, वैसा ही नरक-दर्शन भी लीलामात्र था। जब तक उनका अधिकार रहता है तब तक वे आते-जाते रहेंगे, परन्तु कर्म के आधीन होकर नहीं, लोकरक्षा के लिए। अपने अधिकार की सीमा तक अवतरित होकर अपना कार्य करके चले जाते हैं। इसी प्रकार संसार-चक्र चलता रहता है। यम, वरुण, सूर्य चन्द्रमा, वायु आदि सब अधिकारी पुरुष हैं।

अर्जुन के प्रश्न के ब्याज से कलियुगी प्राणियों पर अनुग्रह करने के लिए भी भगवान ने पुनः अनुगीता का उपदेश किया है। यदि केवल गीता से किसी को बोध न हो,

तो वह अनुगीता का आश्रय ले ले। यही श्री भगवान का प्रयोजन है।

जब वसिष्ठ जी रामजी को योग वासिष्ठ का उपदेश कर रहे थे तो ज्ञानी और श्रीमान् काकभुशुण्डि के समागम की कथा सुनाई। काकभुशुण्डि बोले कि मैं तीसरा वसिष्ठ देखता हूं। यह सुनकर रामजी ने शंका उठाई कि आप तो ज्ञान मूर्ति हैं, आपका जन्म कैसे हुआ ? तब वसिष्ठजी ने उत्तर दिया कि—जैसे समुद्र में अनन्त तरंगें—लम्बी, छोटी-मोटी उठती हैं, उनमें कोई दो तरंगें समान भी हो सकती हैं। इसी प्रकार माया भी अनन्त संघात रचती रहती है। कोई दो संघात समान भी हो सकते हैं उनका नाम वसिष्ठ रख दिया। मुक्त होकर कोई नहीं लौटता। उसके समान अन्य कोई आ जाता है।

वि० :—हे महात्मन् ! मैं आपको पुनः-पुनः प्रणाम करता हूं। आप गीता-तत्त्व के पारदर्शी हैं। आप की कृपा से मेरे शंकाशूल उन्मूलित हो गये हैं। यह कहकर, पुनः मस्तक नवाकर विचक्षण विदा हो गया।

तुम ही नाथ संभालो !

[श्री रमेशदत्त शर्मा 'कौशिक']

नहीं सँभाला जाता मुझसे, अब यह जीवन भार प्रभु।
दे दो तनिक सहारा मेरी, नैय्या है मझधार प्रभु॥

तुम को छोड़ कहां जाऊँ, और किसकी करूं पुकार प्रभु।
तुम ही नाथ संभालो मेरे, जीवन की पतवार प्रभु॥

चण्डीगढ़-समाचार :—

श्री गुरुदेव जी द्वारा योग की महत्ता पर प्रकाश

हर्षोल्लासमय स्वागत

प्रभुजी एवं श्री गुरुदेवजी के दर्शनीय मंदिर

(हमारे संवाददाता द्वारा)

'अनेक अज्ञानी और अपरिपक्व बुद्धि के लोगों ने योग-विद्या और योग-मार्ग के सम्बन्ध में भ्रामक प्रचार करके उसके प्रति जनता में अरुचि और उपेक्षा की भावना फैला रखी है जिसके कारण इस मोक्षदायिनी और कल्याणकारिणी विद्या का जैसा व्यापक प्रचार होना चाहिए था वैसा नहीं हो पा रहा है। फिर भी इधर पिछली दशाब्दि में योग-विद्या के महत्व का देश-विदेश में लोगों ने अधिकांश जाना और माना है। यह बिना किसी सन्देह के निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि मनुष्य का कल्याण शास्त्रों से प्रतिपादित योग-मार्ग को अपनाने से ही हो सकता है।'

यह सार-सन्देश है उन महत्वपूर्ण प्रवचनों का जो चण्डीगढ़ के योग-प्रचार कार्यक्रम के अन्तर्गत श्री गुरुदेव जी के श्रीमुख से निःसृत हुए। श्री गुरुदेव जी ने अपने प्रवचनों में योग के विविध अङ्ग-उपाङ्गों पर भी प्रकाश डाला और उदाहरणों तथा प्रमाणों सहित प्रतिपादित विषय को सरल ढंग से दर्शकों तथा श्रोताओं को समझाकर बोधगम्य बनाया।

श्री गुरुदेव जी की यह प्रवचन-श्रृङ्खला चण्डीगढ़ में पूर्व निश्चित कार्यक्रमानुसार १८ अक्टूबर से २५ अक्टूबर तक चली जिसमें प्रतिदिन बहुसंख्यक भाई-बहन अतीव भक्ति भाव और श्रद्धा के साथ सम्मिलित होते थे।

टूण्डला में जन्म-दिवस महोत्सव की पूर्णता के पश्चात ११ अक्टूबर को श्री गुरुदेव जी सम्राट आश्रम आ गये थे। वहाँ एक रात्रि विश्राम करके १२ तारीख को ही टूण्डला जंक्शन से दोपहर को लगभग १२ बजे कालका मेल से दिल्ली होकर चण्डीगढ़ के लिए रवाना हुए। टूण्डला से यद्यपि श्री गुरुदेव जी एक दिन पहले ही भक्त समुदाय से भावभीनी विदाई लेकर विदा हुए थे लेकिन कालका मेल पकड़ने के लिए जैसे ही वे आश्रम से कार द्वारा चलकर प्लेटफार्म पर आये टूण्डला मण्डल के सभी प्रभुजी भाई-बहन अपने गुरुदेव को माल्यार्पण करने के लिए स्टेशन पर

आ पहुंचे थे। सभी ने उन्हें माल्यार्पण करके उनका आशीर्वाद ग्रहण किया और उन्हें जय-घोषों के बीच उन्हें विदाई देकर मेल ट्रेन के चलने पर अपने अपने घरों को वापिस लौटे।

अलीगढ़ और गाजियाबाद के स्टेशनों पर भी ट्रेन के पहुंचने पर गुरुदेव जी के दर्शनों की उत्कण्ठा लिये भक्तों की भारी भीड़ मालायें लिये हुए खड़ी मिली। गाजियाबाद पर स्वयं गुरुदेव जी गाड़ी से उतर कर नीचे प्लेटफार्म पर उस जगह आ पहुंचे जहां भक्त समुदाय खड़ा-खड़ा 'श्री प्रभुजी की जय' और 'श्री गुरुदेव जी के जयघोष' से वायुमण्डल को गुञ्जायमान कर रहा था। सभी ने अपने गुरुदेव को मालायें पहनाईं और उनके पावन कर स्पर्श से आशीर्वाद तथा प्रसाद ग्रहण किया। भक्त समुदाय की श्रद्धा दर्शनीय थी। मेल ट्रेन गाजियाबाद से जब रात्रि के लगभग ९ बजे दिल्ली जंक्शन पहुंची तो यहां भी शिष्यों और प्रेमी साधकों की एक भारी भीड़ एकत्रित मिली जो अपने श्रद्धास्पद गुरुदेव के आगमनकी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी, यहां मेल ट्रेन लगभग दो घण्टे तक रुकी रही, तब तक सभी श्रद्धालु भक्तजन श्री गुरुदेव जी के दर्शनों और ज्ञान-वार्ता का आनन्द लेते रहे। प्रमुख स्टेशनों पर हुए इन स्वागत-समारोहों को देख-देख कर कौतूहलवश सभी यह सोचते और पूछते थे कि यह कौन स्वनाम-धन्य महापुरुष हैं जिनका जगह जगह इतना भव्य स्वागत-सम्मान प्रदान किया जा रहा है।

दिल्ली से चलकर लगभग ३ बजे रात्रि को मेल ट्रेन अम्बाला छावनी पहुंची। यहीं श्री गुरुदेव की ट्रेन-यात्रा समाप्त होनी थी। चण्डीगढ़ से भाई ओमप्रकाश शर्मा कार लेकर गुरुदेव जी को ले जाने के लिए आ पहुंचे थे। आदर और श्रद्धापूर्वक श्री गुरुदेव जी को ट्रेन से उतारा गया तथा कार द्वारा उन्हें चण्डीगढ़ ले जाया गया। भाई ओमप्रकाश जी शर्मा के निवास स्थान पर जहां श्री गुरुदेव जी को ठहरना था दर्शनार्थी सत्संगी भाई-बहनों की भारी भीड़ स्वागतार्थ खड़ी थी। सभी ने जय-जयकारों के नारों के बीच श्री गुरुदेव जी का वन्दन और अभिनन्दन किया। सर्व प्रथम भाई श्री ओमप्रकाश जी की धर्म-पत्नी श्रीमती विमलादेवी जी ने अपने गुरु-देव जी की भव्य आरती उतारी तत्पश्चात् अन्यों ने। सभी ने श्री गुरुदेव जी के चरण-कमलों को मस्तक से स्पर्श करके अपने हृदय की विह्वलता और भक्ति भावना का परिचय दिया।

प्रचार-कार्य्यक्रम

चण्डीगढ़ पहुंचने पर पहले दिन विश्राम के लिए रक्खा गया था। योग-प्रचार का कार्य्यक्रम दूसरे दिन से प्रारम्भ होना था किन्तु सत्संगी भाइयों की उग्रता और व्यग्रता को देखते हुए पहले दिन से ही प्रचार-कार्य प्रारम्भ कर दिया गया जो २५ अक्टूबर तक नियमित रूप से चलता रहा। श्री गुरुदेवजी ने अपने प्रवचनों में प्रतिदिन लोगों को योग-मय जीवन अपनाने को प्रेरित किया तथा बताया कि मानव-जन्म अमूल्य है इसको

स्वयं ही गँवा देना बुद्धिमत्ता नहीं है। श्री गुरुदेवजी के प्रवचनों से पहले सामूहिक आरती व श्री इन्दु शर्मा के मनोहर भजन होते थे। श्री प्रभुजी का संगीतमय स्तवन भी कार्यक्रम का मुख्य अंग रहता था। प्रातःकाल स्नानादि के पश्चात् आरती, स्तुति व ध्यानाभ्यास का कार्यक्रम चलता था तथा योग-साधनों द्वारा रोगों की चिकित्सा व उपाय-विधि निःशुल्क बताई जाती थी।

नियत कार्यक्रमों के पश्चात् जो समय बचता था उसमें प्रातःकाल और सायंकाल सत्संगी भाई-बहनों के घरों पर भी सत्संग व संकीर्तन का कार्यक्रम चलता था। प्रायः गुरुदेवजी इनमें भी सम्मिलित होने का समय देने की कृपा करते थे। मध्याह्नोत्तर ४ से ५ बजे तक का समय आगन्तुकों के मिलने के लिए निश्चित रहता था।

चण्डीगढ़ में साधकों के घरों में होनेवाले सत्संगों की अपनी अलग विशेषता रहती है। श्री गुरुदेव के प्रति श्रद्धा और भक्तिभावना की जो भागीरथी प्रवाहित होती है वह सचमुच अनुपम होती है। कार्यक्रम इतने अधिक रहते रहे कि श्री गुरुदेवजी को एक-एक दिन में दो-दो घरेलू सत्संगों में जाने का आयोजन करना पड़ा। इन घरों में आयोजित सत्संगों में जो विशेष उल्लेखनीय और दर्शनीय दृश्य देखने को मिला वह था श्री प्रभु जी और श्री गुरुदेवजी की झाँकियों के मन्दिर। हर घर के मन्दिर की शोभा और छटा अपने-अपने ढंग की अनोखी थी। यह प्रथा अन्य स्थानों के भाइयों के लिए अनुकरणीय होनी चाहिए। इसका श्रेय यहाँ भाई योगप्रकाशजी शर्मा को ही विशेषरूप से है। इनके सुझाव पर ही यहाँ इन मन्दिरों के सृजन की प्रथा पड़ी है।

चण्डीगढ़में गुरुदेवजी और उनके साथ आये ब्रह्मचारियों व भजनोपदेशकों आदिके आवास तथा भोजनव्यवस्था श्री शर्माजी व उनकी धर्मपत्नी श्रीमती विमलादेवीने सुचारुरूपसे सम्हाली हुई थी। कभी किसी को किसी प्रकार की असुविधा का रंचमात्र भी आभास नहीं हुआ।

रोपड़ में भी

चण्डीगढ़ से रोपड़ की दूरी २३-२४ मील है। अपने चण्डीगढ़ के व्यस्त कार्यक्रम में से समय निकालकर श्री गुरुदेव जी रोपड़ के सत्संगी भाई-बहनों के आग्रह पर प्रवचनार्थ रोपड़ भी कुछ घण्टों के लिए कार द्वारा गये और उसी दिन वापिस आगये।

चण्डीगढ़ से विदाई

निश्चित कार्यक्रम के पश्चात अन्त में विदाई की वह वेला भी आ पहुँची जब बरबस न चाहते हुए भी भक्तों को अपने गुरुदेव भगवान को साश्रु विदाई देनी पड़ी, सभी के मन भारी थे। सभी की आकांक्षा थी कि उनके श्री गुरुदेव उन्हें छोड़कर न जायें। लेकिन अपने लोककल्याणकारी योग-प्रचार कार्यक्रम की पूर्ति हेतु उन्हें जाना ही होगा यह विचारकर सभी उन्हें विदा के लिए उपस्थित थे। सर्व प्रथम बहन विमलादेवी ने विदाई की आरती उतारी बाद में दूसरी

बहनों और भाइयों ने आरती व स्तुति की। श्री गुरुदेवजी को जिस कार से चलना था उसे सत्संगी भाई-बहनों की भारी भीड़ घेरे खड़ी थी। सभी की आँखों से वियोग की अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। श्री गुरुदेवजी को १० बजे यहाँ से चल देना था किन्तु भक्त-समुदाय के प्रेमरूपी घिराव के घेरे में पड़कर वे ११ बजे से पहले न निकल सके।

कार उन्हें लेकर अम्बाला छावनी की ओर चल पड़ी। सभी की मूक मनोगत भावना सूर की वाणी में कह रही थी :—

बाँह छुड़ाये जात हो
निबल जानि कै मोहि।

इस प्रकार चण्डीगढ़ का योग-प्रचार कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। चण्डीगढ़ की इस यात्रा में श्री गुरुदेवजी के साथ आश्रम से ब्रह्मचारी केशवदेव, श्री इन्दु शर्मा तथा श्री राधाकृष्ण शर्मा भी गये थे।

चण्डीगढ़ से अम्बाला तक श्री गुरुदेवजी को पहुँचाने जो भाई-बहन आये थे उनमें श्री ओमप्रकाश शर्मा, श्रीमती विमलादेवी, तथा धर्मपत्नी श्री रामचन्द्र कालिया, श्री मोहन कालिया व उनकी धर्मपत्नी व उनकी बहन सुदर्शन कालिया, राजकुमार, योगेश-कुमार एवं श्री महिन्द्राजी आदि थे।

जीवन का आधार

आप जीवन से चाहते क्या हैं? इसके द्वारा आप क्या किया चाहते हैं? नाम कमाना चाहते हैं, कुछ करके दिखाना चाहते हैं अथवा कुछ बनाना चाहते हैं, या समझना चाहते हैं जीवन के गूढ़ रहस्यों को? या इस लोक को आदर्श लोक बना देना चाहते हैं अथवा सभी कुछ एकदम से किया चाहते हैं?

धर्म तथा विश्वास के बारे में उन लोगों की चर्चा जिन्होंने अपने भीतर खोजा नहीं, अपना अन्तर-मंथन नहीं किया, क्या कीमत रखती है? अलौकिक कहें न कहें भगवत्-सत्ता मेरे लिए तो पल-पल की अनुभूति हो गई है, मैं उन लोगों के तर्कों और युक्तियों को सुनूं, तो कैसे, और समझूं तो किस तरह से? मुझे तो बाल्य-प्रलाप से अधिक वह प्रतीत नहीं होती। उस सत्ता के बारे में ठीक धारणा बनाना कठिन हो सकता है, किन्हीं लोगों के लिए। परन्तु बिना उस जीवन के अवलम्बन के जीवन तो केवल मात्र उच्छृङ्खल और सारहीन ही जान पड़ता है। तार्किक भी तो कभी उसके न होने को सिद्ध नहीं कर सकते हैं। जो उसके रास्ते में चलते हैं केवल वही उसको अनुभव करते हैं क्योंकि जीवन का आधार ही वह है।

—एक महात्मा

सचित्र योगासन और उनके लाभ

वृषासन

याम्य गुल्फे पायुमूलं वाम भागे पदेतरम् ।
विपरीतं स्पृशेद्भूमिं वृषासनमिदं भवेत् ॥

विधि :— अपने दाहिने गुल्फ (गांठ) अर्थात् एड़ी का गांठ वाले भाग को गुदा द्वार के नीचे ले जाय और उस पर दृढ़ता के साथ बैठ जाय और दूसरे पैर को उलट कर घुटने के पास से ले जाकर पिछली ओर इस प्रकार जमीन में जमाकर रखे कि वह जमीन पर जमा रहे । यह आसन बैठे हुए बैल की आकृति जैसा बनता है । अतः इसका नाम वृषासन है ।

समय :— साधारण शनैः-शनैः अभ्यास बढ़ायें ।

लाभ :— यह अत्यन्त पुष्टिकर एवं वीर्य वर्धक है।

संकटासन

वामपाद् चितेर्मूलं संन्यस्य धरणी तले।
पाद दण्डेन याम्येन वेष्टये द्वाम पादकम्॥
जानु युग्मे करौ युग्मा एतेत्त संकटासनम्॥

विधि :— अपने दाहिने पैर को बायें पैर से लपेट कर इस प्रकार बैठें कि बायें पैर के उस अंगूठे पर सारे शरीर का सन्तुलन रहे। यह आसन भी बदल-बदल कर दोनों पैरों से करना चाहिये। अपने दोनों हाथ घुटनों पर जमाकर रखने चाहिये।

समय :— साधारणतः शनैः-शनैः अभ्यास बढ़ायें।

लाभ :— वातनाशक व दृढ़ता का जनक है।

गुप्तासन

जानुनोरन्तरे पादौ, च गोपयेत् ।
पादोपरि च संस्थाप्य गुदं गुप्तासनं विदुः ॥

विधि :— दोनों घुटनों के बीच से अपने पैरों को स्वस्तीक आसन के ढंग से ले जायें व पैरों पर ही बैठ जांय, पैरों के ऊपर बैठ जाने से गुह्य भाग दब जायेगा। इसी कारण इसको गुप्तासन कहते हैं।

समय :— साधारण शनैः-शनैः अभ्यास बढ़ायें।

लाभ :— वीर्य दोषों के लिये हितकर है।

समकोणासन

विधि :— प्रथम वज्रासन के ढंग से बैठ जांय उसके बाद अपने एक पैर को खोलना शुरू कर दें। धीरे-धीरे कई दिन के अभ्यास से खुल जायेगा किन्तु एक ही पैर को इतना खोलें कि वह घुटने के बिलकुल बराबर में आ जाय। एक पैर का अभ्यास हो जाने के बाद दूसरे पैर को खोलना शुरू करें इसे भी धीरे-धीरे खोलते रहें व बढ़ाते रहें कुछ दिन के अभ्यास के बाद यह भी इतना खुलने लगेगा कि घुटने के बराबर आ जायेगा। इस प्रकार दोनों पैरों को घुटनों से समकोण में लाकर जमीन पर पीठ रखकर सीधे बैठ जांय व दोनों हाथों को नमस्कार करने वालों की भांति जोड़कर रखें। इसी का नाम समकोणासन है। इसमें चारों ओर से समकोणता आ जाती है।

समय :— बहुत शनैः-शनैः प्रति ५ या सेकिण्ड से बढ़ावें व १॥ या २ मिनट तक ले जांय।

लाभ :— इस आसन के करने से घुटनों के अन्दर होने वाला अन्धो वात (गठिया वाय) नष्ट होता है, और भी सभी प्रकार के वात रोगों में लाभप्रद है।

सवाई-धाम

[श्री जुगमन्दरदासजी, सहारनपुर]

मुझे तो लागे प्यारा सवाई धाम।
दीनदयाल जहां पर रहते, करुणानिधि सुखधाम॥
गगन भेदी कैलाश शिखर से देखा प्रभु ने जग को।
योग मार्ग में भ्रष्ट बने जन चलते उलटे मग को॥
भांति भांति की चली प्रणाली, योग का भूले नाम।
मुझे तो लागे······

आगई लहर शिवा के मन में आ अमृतसर जन्म लिया।
बचपन में ही श्रीप्रभु ने, वहां से भी था गमन किया॥
रूप योग का बतलाने को, आए थे सवाई धाम।
मुझे तो लागे······

भ्रू के अन्दर गुफा बनाकर, ध्यान समाधी भी लाई॥
योग का दीप जला कर अन्दर मेटीथी मन की स्याही।
दीन हीन सब को ही तारा दे चरण कमल विश्राम॥
मुझे तो लागे······

कीकर की थी दांतुन गाड़ी, आंवले का जो वृक्ष बना।
नेत्र हीन एक लड़की आई, जिसका भी था काम बना॥
कुवें बीच गंगा दिखलाई, पाप हरण सुखधाम॥
मुझे तो लागे······

यही भुमि है जन तारण को जहां रहे प्रभु राम।
पशु पक्षी भी गाते यहां पर राम राम हरे राम॥
ध्यान मग्न कोई शिवको देखे कोई देखे है घनश्याम।
मुझे तो लागे······

योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन यहां अब करते हैं वास।
प्रभु रामलालजी सौंप गए इनको अपना दिव्य प्रकाश॥
चरण-शरण में जिनकी रहकर दास के बनते सब काम।
मुझे तो लागे······

श्री गुरुदेव जी का कार्य-क्रम

दिनाङ्क	कार्य-क्रम
२—१२—७० से ७—१२—७० तक	दतिया में योग-प्रचार कार्यक्रम पता।— श्री शारदा प्रसाद सक्सेना एडवोकेट दतिया (म० प्र०)
८—१२—७० से १३—१२—७० तक	झाँसी में योग प्रचार कार्यक्रम पता :— श्री ईश्वरीप्रसाद खडुर, मदन-निवास, नानकगंज, सीपरीबाजार झाँसी
१४—१२—७० को	झाँसी से दिल्ली के लिये बम्बई अमृतसर एक्सप्रेस से आगरा-मथुरा होते हुए जायेंगे।
१५—१२—७० से १८—१२—७० तक	नेताजी नगर नई दिल्ली में कार्य-क्रम पता :— श्री देवीसिंह सीसोदिया 7209 (B-75) नेताजी नगर नई दिल्ली
१९—१२—७० से २३—१२—७० तक	विश्व-योग सम्मेलन विज्ञान भवन, नई दिल्ली में निवास :— मंदिर गुदौलियान, बारह टूटी सदर बाजार दिल्ली
२३, २४ दिसम्बर	ओंकारनगर, त्रीनगर दिल्ली
२५—१२—७० से २—१—७१ तक	दिल्ली में योग-प्रचार कार्य-क्रम पता :— मंदिर गुदौलियान, बारह टूटी सदरबाजार, दिल्ली।

३—१—७१	दिल्ली जंकशन से रात्रि को लगभग ८ बजे अपरइण्डिया एक्सप्रेस से अलीगढ़, टूण्डला, इटावा, कानपुर, इलाहाबाद, होते हुए बनारस के लिये प्रस्थान।
५—१—७१ से १२—१—७१ तक	काशी हिन्दु विश्व विद्यालय में योग-प्रचार कार्य-क्रम पता :— श्री काशी नरेशलाल कुलसचिव कार्यालय काशी हिन्दू विश्व विद्यालय वाराराणसी —५
१३—१—७१ से ३१—१—७१ तक	पर्व कुम्भ प्रयाग (इलाहाबाद) पता :— श्री डा० भैरव प्रसाद जौहरी १२५ अलोपी बाग, इलाहाबाद
कुम्भ-स्नान पर्व	१४ जनवरी मकर संक्रांति
" "	२३ जनवरी एकादशी
" "	२६ जनवरी मौनी अमावस्या
" "	३१ जनवरी वसंत

नोट:— उपरोक्त कार्य-क्रम प्रायः निश्चित ही है किन्तु किन्हीं विशेष परिस्थितिवश इनमें परिवर्तन किया जा सकता है।

—व्यवस्थापक

लेखक बन्धुओं से

'सिद्धयोग' में प्रकाशनार्थ जो लेख भेजे जांय वे लेखकों के अपने लिखे मौलिक लेख ही होने चाहिए जिन ग्रन्थों के अंश अथवा अन्य रचनाओं को उदाहरण अथवा प्रमाण रूप में उद्धृत किया जाय उनका नाम तथा पृष्ठ एवं श्लोक संख्या आदि का स्पष्ट संकेत भी होना चाहिए। कुछ लेखकों के ऐसे लेख भी हमें प्राप्त हो जाते हैं जिनकी अधिकांश सामग्री दूसरे के लेखों अथवा ग्रन्थों से लेकर ज्यों-की-त्यों अपने नाम से दे दी जाती है। इस प्रवृत्ति का अनुमोदन किसी दशा में भी नहीं किया जा सकता है। यदि दूसरे के लेख भेजे जांय तो मूल लेखक का नाम अवश्य देना चाहिए अपना नाम प्रेषक के रूप में वे दे दें तो हानि नहीं। आशा है हमारे इस निवेदन पर ऐसे लेखक जो दूसरों की सामग्री को अपने नाम से भेज देते हैं अवश्य ध्यान देंगे।

—संयुक्त सम्पादक

Sidha-yog

Regd No. L. 1082

योग के सिद्धान्त और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्ध योग

संस्थापक संपादक तथा संरक्षक:
योगिराज अनंत श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

छोटी किंतु महत्वपूर्ण बातें

सार्वजनिक संस्थाओं को बड़ी-बड़ी रकमों का दान करना तथा ऐसे बड़े परोपकार करने से ही सेवा के क्षेत्र का अंत नहीं होता। हिम्मत हारते हुए अवसन्न हृदय को साहस प्रदान करने वाला एक शब्द या निराश जीवन में आशा तथा आनन्द उत्पन्न करने वाली एक मुसकान को भी सेवा समझी जाने का उतना ही दावा है जितना दुःसह बलिदानों तथा वीरतापूर्ण कष्ट सहन एवं स्वार्थ त्याग का। एक दृष्टि भी जो हृदय से कटुता दूर कर देती है तथा नये प्रेम से उसे पूर्णस्पन्दित कर देती है, यह भी सेवा है। यद्यपि इसमें सेवा का कोई भाव नहीं रहता। स्वतंत्र रूप से देखा जाय तो ये बातें, बहुत छोटी दिखाई देती हैं किंतु ऐसी छोटी बातों से ही तो जीवन निर्मित हुआ है, और यदि ये छोटी बातें उपेक्षित कर दी जांय, तो जीवन न केवल सौन्दर्य रहित ही न हो जाय, किंतु आध्यात्मिकता शून्य भी हो जाय।

मुद्रक—देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य' कम्पोज प्रिंटिंग प्रेस, बल्ई कटरा, राजागंज-आगरा-[illegible]